भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

राजभाषा पत्रिका

दलहन आलोक

अंक : एकादशम्

2013

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान
कानपुर 208 024

राजभाषा पत्रिका

अंक : एकादशम् 2013

दलहन आलोक

भाकृअनुप
ICAR

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान
कानपुर 208 024

INDIAN INSTITUTE OF PULSES RESEARCH
भादअस

प्रकाशन संख्या : 15, 2013

मुद्रित : सितम्बर, 2013

प्रकाशक : डा. ना. नडराजन, निदेशक
भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान
कानपुर-208 024

सम्पादक मण्डल : श्री दिवाकर उपाध्याय
डा. राजेश कुमार श्रीवास्तव
श्री कन्हैया लाल
श्री हशमत अली

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, तार्किकता एवं सत्यता हेतु लेखकगण उत्तरदायी हैं।

मुद्रक : आर्मी प्रिंटिंग प्रेस, 33 नेहरू रोड, सदर कैन्ट, लखनऊ, दूरभाष : (0522) 2481164

निदेशक की कलम से.....

हमारे देश का श्रृंगार है विविधता और इसी विविधता भरे भारत को हिन्दी द्वारा एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। हिन्दी एक समृद्ध भाषा है और इसकी सम्प्रेषणीयता भी उच्च कोटि की है। हिन्दी की इसी महत्ता को समझते हुए, देश के संविधान निर्माताओं ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी हमारी राजभाषा है और हम उसका प्रचार-प्रसार देश के प्रशासनिक कार्यों में ही नहीं, अपितु ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के सभी क्षेत्रों में करने हेतु संकल्पबद्ध रूप से प्रयासरत है। हम यह मानते हैं कि हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रचार है और हिन्दी-प्रेम, देश-प्रेम का ही प्रतीक है। हिन्दी ने राष्ट्र को जोड़ने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है साथ ही यह विश्व फलक में अपनी एक नई पहचान भी बनाती जा रही है।

प्रत्येक वर्ष दलहन आलोक का प्रकाशन, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर का हिन्दी को बढ़ावा देने का एक उत्कृष्ट प्रयास है। इसके प्रकाशन में सभी का सहयोग अविस्मरणीय है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का यह अंक राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु बहुउपयोगी सिद्ध होगा। मैं उन सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों/कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने रचनात्मक सहयोग से हिन्दी का मान बढ़ाया है। पत्रिका के आगामी अंकों में सुधार एवं निखार हेतु पाठकों का आलोचनात्मक सहयोग भी आमंत्रित एवं अपेक्षित है।

संस्थान की राजभाषा पत्रिका ''दलहन आलोक'' निरन्तर प्रगति की ओर उन्मुख है। पत्रिका यूँ ही निरन्तर पल्लवित पुष्पित होती रहे, इसी शुभकामना के साथ.....।

(ना. नडराजन)
निदेशक

सम्पादकीय

कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और गुजरात से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक, हिन्दी विचारों के आदान-प्रदान की सबसे लोकप्रिय भाषा है। हमारा देश अनेकता में एकता का प्रतीक है, और इसका एक मात्र आधार हिन्दी ही है जो पूरे देश को एक सूत्र में बाँधती है। राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी के विकास के लिए, महती साधना की आवश्यकता है। प्रत्येक राष्ट्र के लिए राष्ट्र भाषा की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की। हिन्दी को हम एक सर्वदेशिक माध्यम मानते हैं जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोग विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। अपने-अपने क्षेत्र में प्रान्तीय भाषाएं समृद्धिवान बनें, हिन्दी तो यही मंगल कामना करती है।

दलहन आलोक का प्रस्तुत अंक, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर का हिन्दी को बढ़ावा देने का एक सामूहिक प्रयास है। इसमें तकनीकी लेखों एवं सामान्य अभिरुचि की रचनाओं को सरल और सुबोध हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। हम कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन-जन तक पहुँचाने का हमारा लक्ष्य इसमें समाहित है।

हमेशा की तरह यह अंक भी पाठकों का ज्ञानवर्धन के साथ-साथ मनोरंजन भी करेगा। हमने राजभाषा पत्रिका के लेखन/प्रकाशन स्तर को ऊपर उठाने का भरपूर प्रयास किया गया है। उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हम संस्थान के निदेशक महोदय एवं सभी सहभागियों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

सम्पादकगण

अनुक्रमणिका

- निदेशक की कलम से
- सम्पादकीय

वैज्ञानिक/तकनीकी आलेख

1. ग्रीन हाउस में पराजीनी दलहनी फसलों का प्रबन्धन 1
2. गाँवों के विकास के आधार स्तम्भ : साक्षरता, स्वच्छता, स्वास्थ्य एवं आत्मनिर्भरता 4
3. उकठा रोग - दलहनी फसलों का कैंसर 7
4. ध्रुवीय चमत्कार एवं अर्न्तग्रहीय ऊर्जायें 9
5. कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम 2001 12
6. जीन रूपान्तरित फसलों का भूमण्डलीय आंकलन 19
7. पराजीवी पौधों का अतीत, वर्तमान एवम् भविष्य 21
8. दलहन में हरित क्रांति का आगाज 23
9. धान के पश्चात् खाली पड़े क्षेत्रों में दलहनी फसलों की संभावनाएं 25
10. दलहनी फसलों में खरपतवार का प्रकोप एवं नियंत्रण 27
11. दलहनी फसलों में जैव उर्वरक का महत्व 30
12. जीनोम सीक्वेंसिंग का महत्व 33
13. दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन 35
14. पादप विषाणु कैसे फैलते हैं 39
15. कीट प्रबंधन - पर्यावरण हितैषी समाधान 42
16. बुन्देलखण्ड में त्वरित दलहन उत्पादन परियोजना की सफलता 45
17. दलहन द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार 48

18. दलहनी फसलों के लिए कारगर खरपतवारनाशी : इमॉझिथापर 51

19. भारत में दलहन उत्पादन 55

20. भारत में खाद्य सुरक्षा 57

21. किसानों से किसानों तक कृषि तकनीकों का प्रसार : संकल्पना एवं अनुभव 59

22. दलहन उत्पादन में गंधक का महत्वपूर्ण योगदान 62

23. मूँग और उर्द के हानिकारक कीट एवं उनका प्रबन्धन 67

सामान्य अभिरुचि

24. नेटवर्किंग का महत्व 75

25. दालों का महत्व 76

26. मानव जीवन पर अन्न का प्रभाव 78

27. अंकुरित दालें स्वास्थ्य के लिये ज्यादा लाभदायक 79

28. सूचना एवं संचार तकनीक का माध्यम : कम्प्यूटर 81

कविताएं

29. अन्दर झाँक 82

30. पिता है तो.....! 83

विविधा

31. राजभाषा कार्यान्वयन समिति 85

32. हिन्दी दिवस का आयोजन 86

33. वर्ष 2012 में दिए गए राजभाषा पुरस्कार 87

34. संस्थान के हिन्दी प्रकाशन 89

ग्रीन हाउस में पराजीनी दलहनी फसलों का प्रबन्धन

मलखान सिंह एवं सुभोजित दत्ता

देश की बढ़ती हुई आबादी, गरीबी, भुखमरी को कम करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी का एक प्रयास नई हरित क्रान्ति को जन्म दे सकता है। अगर ये प्रयास सफल हुआ, तो देश की गरीबी एवं भुखमरी समाप्त हो जायेगी, जैव प्रौद्योगिकी का सफलतम प्रयोग जो दलहनी फसलों पर किया जा रहा है, इसका तात्पर्य यह है कि पौधों की नई कीट एवं रोग प्रतिरोधक किस्में तैयार करके इनकी पोषण एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना है। जैव प्रौद्योगिकी एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा हम जीन में फेर बदल करके दलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ा सकते है। हमारे देश में भी पराजीनी फसलों के अध्याय खुल चुके हैं। प्रकृति जो करिश्मा लाखों साल में कर पाती थी, वह जेनेटिक इंजीनियरिंग के दम पर पलक झपकते सम्भव हो चला है। इधर अंधा-धुन्ध कीटों पर काबू पाने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग सिर-दर्द ही नहीं, जान लेवा बन गया है, पर अब ऐसी पराजीनी फसलें तैयार की जा रही है, जिनके पास कीड़े फटकेंगें ही नहीं। इनमें विषाक्तता पैदा करने वाली जीन निकाल कर खाद्य फसलों में पहुँचा दिया जा रहा है। जो मानव को तो नुकसान नहीं पहुँचाते हैं, मगर हानिकारक कीटों का हाजमा बिगाड़ देते हैं। रोचक बात यह है, कि ये जहरीले जीन्स का मित्र कीटों पर कोई असर नहीं पड़ता है। अभी तक भारतीय वैज्ञानिकों ने बैगन, टमाटर, पत्ता गोभी, धान, कपास एवं दलहनी में भी बीटी जीन डालकर महत्वपूर्ण परीक्षण किये हैं। इन सभी पर पराजीनी फसलों पर सफलतम परीक्षण करने के लिए एक अच्छे *ग्रीन हाउस (इनवायरमेंट कन्ट्रोल चैम्बर)* की आवश्यकता पड़ती है।

ग्रीन हाउस की आवश्यकता

पराजीनी फसलों पर जैव प्रौद्योगिकी खुले मैदानों एवं खेतों पर किया जाना गैर कानूनी है और भारत सरकार द्वारा पूर्ण प्रतिबन्धित है। अतः ऐसे परीक्षणों को करने के लिए एक अच्छे *ग्रीन हाउस (इनवायरमेंट कन्ट्रोल चैम्बर)* की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए *ग्रीन हाउस* का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। *ग्रीन हाउस* 6 मि.मी. *मल्टीवाल यूवीस्टेबिलाइज्ड पाली कार्बोनेट* शीट से बना एक *चैम्बर* होता है। जिसमें प्रकाश तापक्रम, आर्द्रता आदि को नियंत्रित करने के लिए एक *ऑटोमेटिक कन्ट्रोल पैनल* लगा होता है। जिसकी मदद से हम अपनी आवश्यकतानुसार नियंत्रित करके पराजीनी फसलों को तैयार कर सकते हैं।

ग्रीन हाउस में प्रयोग आने वाले उपकरण एवं खादें

ग्रीन हाउस में पराजीनी फसलों को तैयार करने के लिए निम्नलिखित उपकरण एवं खादें (उर्वरक) प्रयोग में लाते हैं :-

क) **उपकरण एवं औजार :** तापक्रम मापने के लिए थर्मामीटर, स्प्रेयर, फावड़ा, खुर्पी, हजारा, बाल्टी टब, रबर पाइप आदि।

ख) **रासायनिक एवं कार्बनिक खादे :** उपजाऊ बलूई दोमट मिट्टी, गोबर की खाद (एम.वाई.एम.), *वर्मीकम्पोस्ट* (केंचुए की खाद), *बर्मीकुलाइड कोलोपिट,* डी.ए.पी., यूरिया, गंधक एवं मल्टीन्यूट्रिएन्ट पाउडर आदि।

गमलों का चुनाव करना

ग्रीन हाउस में पराजीनी दलहनी फसलें तैयार करने के लिए जैसे - प्लास्टिक के गमले, मिट्टी के गमले एवं सीमेन्ट या चीनी मिट्टी के गमले प्रयोग में लाये जा सकते हैं, लेकिन मिट्टी के गमले सर्वोत्तम होते हैं ये पौधों के लिए पूर्णताः नमी बनाये रखते हैं। गमलों का चुनाव करते समय गमलों के आकार पर भी ध्यान देना चाहिये। अरहर के पौधों को लगाने के लिए 14-16 इंच के बड़े गमले एवं अन्य चना, मटर, मसूर आदि फसलों को लगाने के लिए 10-12 इंच के छोटे गमले प्रयोग में लाना चाहिये।

मिट्टी तैयार करना एवं गमलों को भरना

तैयार मिट्टी को अच्छी तरह तोड़कर भुरभुरा बना लेना चाहिये। तत्पश्चात गमलों को भरने के लिए 1/2 भाग (50%) मिट्टी एवं 1/2 भाग (50%) गोबर की खाद + कोकोपिट + वर्मीकम्पोस्ट + बर्मीकुलाइड को समान अनुपात में मिलाकर मिश्रण तैयार कर लेना चाहिए। गमलों को भरते समय एक बात ध्यान में रखना चाहिए कि गमलों की तली में छिद्र जरूर होना चाहिये। उस छिद्र पर एक टूटे खपरैल का टुकड़ा रखकर, तैयार मिट्टी का मिश्रण भर देना चाहिये। इस प्रकार बुवाई के लिए गमले तैयार हो जाते हैं।

गमलों में बुवाई करना

इस प्रकार तैयार किये गये गमलों को चेम्बर के अन्दर पड़ी लोहे की रैकों पर क्रम बनाकर सीधी लाइन में रख कर गमलों में हल्का पानी दे देते हैं। दो या तीन दिन बाद जब गमलों में उचित नमीं हो तो खुर्पी से गुड़ाई करके मिट्टी को भुरभुरा बना लेते हैं। तैयार गमलों में 1-1 बीज डालकर बुवाई कर देते है। गमलों में नमी बनाये रखने के लिए पॉलीथिन या पुआल से गमलों को ढक देना चाहिए। ऐसा करने से बीज अच्छी तरह एवं जल्दी उग आते हैं।

सिंचाई एवं पौधों की देखभाल करना

गमलों में की गई बुवाई के एक सप्ताह बाद जब पौधे उगने लगे तो उन पर की गयी *मलचिंग* को हटा देना चाहिए। 4-5 दिन बाद हजारे से हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। आवश्यकता अनुसार 2-3 दिन बाद के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। इस तरह ग्रीन हाउस में लगाये गये पौधों की नियमित देखभाल करनी पड़ती है। प्रतिदिन चैम्बरों को देखते रहना चाहिए, कि *चैम्बर* में लगे *फैन, कूलिंग पैड, फागर सिस्टम (ह्यूमिडिटी फायर)* ठीक से काम कर रहे है या नहीं। गमलों में उग रहे खरपतवारों को निकालते रहना चाहिये। यदि कोई बीमारी या कीट का आक्रमण होता है तो उससे संबंधित दवाओं का स्प्रे भी करना चाहिए।

कटाई-मढ़ाई एवं पौधों के अवशेषों को नष्ट करना

परपरागण फसलों में फूल आने से पहले पौधों में *सेल्फिंग बैग* लगा देने चाहिए, जिससे की उत्तम बीज प्राप्त किये जा सके। जब गमलों में लगाये गये पौधे की फलियाँ पूर्ण रूप से पक जायें तो पौधों को सावधानीपूर्वक कटाई करके रख लेना चाहिए। पौधों को पूर्ण रूप से सुखाकर बीजों को अलग कर लेना चाहिये। कटाई एवं मढ़ाई के उपरान्त, पौधों के अवशेषों को न तो बाहर फेंकना है तथा न ही जलाना चाहिए। ऐसा करना *बायोसेफ्टी* नियम के खिलाफ है। अवशेषों को नष्ट करने के लिए *हाइजैनिक* कूड़ा निस्तारण करने वाली संस्थाये जैसे एम. पी. सी. *(मेडिकल पाल्यूशन कन्ट्रोल)* से करना चाहिए।

सावधानियाँ

ग्रीन हाउस में पराजीनी फसलों को तैयार करने के लिए कुछ सावधानियाँ भी बर्तनी चाहिए :-

1. *ग्रीन हाउस* में पराजनी फसलों को लगाने से पहले चेम्बरों की अच्छी तरह साफ सफाई करा लेनी चाहिए।
2. बिजली व पानी की पर्याप्त 24 घंटे व्यवस्था होनी चाहिए।
3. पराजीनी फसलों की बुवाई अलग-अलग *चैम्बर* में करानी चाहिए।
4. परपरागण फसलों पर *सेल्फिंग बैग* लगाने चाहिए।
5. *ग्रीन हाउस* के चारों ओर अन्य कोई फसलें एवं फूल-पत्तियों के पौधों को नहीं लगाना चाहिए।
6. पौधों के अवशेषों को इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए।

इस तरह अच्छा प्रबन्धन करके पराजीनी फसलों को तैयार कर सकते हैं।

गाँवों के विकास के आधार स्तम्भ : साक्षरता, स्वच्छता, स्वास्थ्य एवं आत्मनिर्भरता

हृदय नारायण मौर्य एवं देबेन्दु दत्ता

भारत की संस्कृति और सभ्यता को देखने से पता चलता है कि यह देश सारी दुनिया से निराला है। अनेकता में एकता ही भारत की मिसाल है, यहाँ भिन्नता होते हुए ऐसी एकता है, जिसे अलग करना मुश्किल है। पिछले कई दशकों में भारत के गाँवों में बहुत उन्नति हुई है। भारत की आत्मा गाँवों में बसती है, जनमानस की मुख्य तीन आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान में से पहली आवश्यकता की पूर्ति गाँव ही करते हैं। समय प्रति समय गाँवों के विकास के लिए हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति जैसे कदम उठाये गए जिसके फलस्वरूप गाँवों में थोड़ी आर्थिक समृद्धि आयी है लेकिन सम्पूर्ण विकास के लिए 'आध्यात्मिकता' को जोड़ना आवश्यक है।

अभी हम वैज्ञानिक युग में प्रवेश कर गए हैं, और विज्ञान के द्वारा स्थानों की दूरी को समाप्त कर सके हैं लेकिन मनुष्यों के दिलों की दूरी को समाप्त नहीं कर पाये, यह दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। भारत ने प्रगति अवश्य की है लेकिन एक तरफा। इसका कारण है कि नैतिक, आध्यात्मिक और जीवन मूल्यों की तरफ हमारा ध्यान नहीं रहा। आध्यात्मिकता से हम कोसों दूर होते गए, जिस कारण मनुष्यों के जीवन में मूल्यों को ह्रास होता गया और गाँवों के विकास में अवरोध आते गए जिस कारण हम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके। गाँवों के विकास में निम्न चार बातों का महत्वपूर्ण स्थान हैं।

1. **साक्षरता :** भारत सरकार ने 2 अक्टूबर 1978 को साक्षरता कार्यक्रम शुरू किया और सन् 1985 में इस मिशन को मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने अपने अधीन कर लिया। सन् 1986 में *'ईच वन टीच वन'* (एक व्यक्ति एक व्यक्ति को साक्षर करे) का लक्ष्य रखा। साक्षरता को समझने के लिए विचार करना होगा कि शिक्षा क्या है? शिक्षित किसे कहा जा सकता है। भारत में बहुत लोगों ने पुस्तकों का ज्ञान काफी ग्रहण किया और शिक्षा को परिभाषित किया। एक बार महात्मा गांधी जी ने अपने वक्तव्य में कहा - मेरा जीवन ही संदेश है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा - पढ़ने के पश्चात जो जीवन की धारणाएं बन जाती हैं, वही शिक्षा है। शिक्षा मानव के जीवन को स्व. अनुशासित एवं सुव्यवस्थित करती है। ग्रामवासियों को साक्षर करने के लिए सिर्फ अक्षर ज्ञान सिखाना पर्याप्त नहीं है बल्कि उनके अन्दर छिपी हुई योग्यताएं (जैसे - मूर्ति बनाना, लकड़ी का काम, संगीत कला आदि) को बाहर लाकर उनका विकास करना ही ग्रामवासियों की वास्तविक शिक्षा है। इन कलाओं का विकास न होने के कारण

ये उनके अपने जीवन और समाज के लिए उपयोगी नहीं हो पाते हैं। अर्थात् साक्षरता से अभिप्राय सुषुप्त कलाओं को जागृत करना है, जिससे ग्रामवासी अपने कर्त्तव्य और अधिकार को समझ सके। अभी देश में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान को साक्षरता के मामले में बीमार राज्य कहा जाता है। आज स्थूल साक्षरता के साथ-साथ मानव को आत्मिक ज्ञान देकर आत्मा की सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने की आवश्यकता है।

2. **स्वास्थ्य** : स्वस्थ वह रह सकता है जो हमेशा स्व की स्थिति में रह सकता है। एक है आन्तरिक स्वास्थ्य और दूसरा है वाहय स्वास्थ्य। आन्तरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य भी जुड़ा है इसके लिए शुद्ध, समृद्ध शक्तिशाली संकल्प अति आवश्यक हैं क्योंकि किसी भी बीमारी का कारण मानसिक अस्वस्थता ही है।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए निम्न पहलुओं पर ध्यान देना परम आवश्यक है।

(i) **संतुलित आहार** :- हमारे शरीर की प्रकृति शाकाहारी भोजन ग्रहण करने की ही है इसलिए शरीर को शुद्ध सात्विक भोजन जरूरी है। कई लोगों की मान्यता है कि शाकाहारी भोजन में प्रोटीन प्राप्त नहीं होता है यह एक भ्रम है जबकि अनेक ऐसी सब्जियाँ और दालें हैं जिनसे हमें उचित मात्रा में प्रोटीन प्राप्त होता है। दूध भी एक संतुलित आहार है।

(ii) **संतुलित नींद** :- यह हमारे स्वास्थ्य का एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि शरीर में ऐसी व्यवस्था होती है कि वह खुद की मरम्मत भी खुद ही करता है। जब हम दिन में काम करते हैं तो कुछ न कुछ क्षति और थकावट शरीर को जरूर होती है और नींद के समय शरीर मरम्मत का काम पूरा कर लेता है। इसीलिए अगले दिन हम बिल्कुल ताजा महसूस करते हैं। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए 24 घंटे में 6 से 8 घंटे की नींद आवश्यक है।

(iii) **व्यायाम** :- हम शरीर में खून की गति एवं स्फूर्ति के लिए व्यायाम करते हैं और कई बीमारियों से बचे रहते हैं। शारीरिक व्यायाम के साथ मानसिक व्यायाम (सकारात्मक चिन्तन) भी शरीर के लिए अति आवश्यक है। नकारात्मक चिन्तन का शारीरिक स्वास्थ्य पर रक्तचाप के रूप में तुरन्त असर पड़ता है। सकारात्मक चिन्तन व्यक्ति की मानसिकता पर प्रभाव डालता है एवं खुशी व आनन्द की प्राप्ति कराता है।

(iv) **व्यसन से मुक्ति** :- यह सर्व विदित है कि किसी भी प्रकार के नशे से स्वास्थ्य बिगड़ता है। मनुष्य अपनी परेशानियों से मुक्ति पाने के लिए नशा करता है। भले उसे थोड़े समय के लिए मुक्ति मिलती हो, लेकिन उसके शरीर को और ज्यादा ही नुकसान होता है। सिर्फ एक नारायणी नशे में खुशी है और खुशी जैसी कोई खुराक नहीं। यह नशा मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ बनाता है।

(v) **संबंधों में माधुर्यता :-** संबंधों को मधुर बनाने में मीठी वाणी बड़ा महत्वपूर्ण घटक है। संबंधों में मधुरता का स्वास्थ्य पर सीधा असर पड़ता है। इससे एक सकारात्मक ऊर्जा एक-दूसरे में बहती है और विपरीत परिस्थिति स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

3. स्वच्छता : कहा गया है जहाँ स्वच्छता है वहाँ प्रभुता है, स्वच्छता हमारे लिए बहुत जरूरी है चाहे वह हमारे शरीर, कपड़ों, घर व पर्यावरण की हो। जैसे हम घर की गंदगी को साफ करके बाहर डालते हैं, वैसे ही हमें अपने गाँव की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि गंदगी से कीटाणु और विषाणु पैदा होते हैं। ये विषाणु पर्यावरण को प्रदूषित कर हमें रोगी बना सकते हैं। लोग दीपावली पर घर की सफाई ध्यान से करते हैं क्योंकि समझते हैं कि लक्ष्मी आती है। इसी प्रकार हम रोज स्वच्छता का ध यान रखे तो स्वास्थ्य रूपी लक्ष्मी का वास हमारे घर में हो जायेगा।

गाते हैं कि 'प्रभू जी हमारे मन में बसो' लेकिन अगर हमारे मन में विकारों की गंदगी होगी तो भगवान भला कैसे बस सकता है। अतः स्वच्छ मन के लिए स्वच्छ विचार रखने जरूरी हैं क्योंकि मानसिक विचारों से भी वातावरण में प्रकम्पन्न फैलते हैं। वाणी का भी प्रदूषण न हो इससे भी वातावरण को बचा कर रखना है।

4. आत्मनिर्भरता : गाँव के विकास के लिए आवश्यक है कि गाँव का प्रत्येक गाँववासी आर्थिक रूप से भी आत्मनिर्भर हो। उसे किसी पर आधारित न होना पड़े लेकिन बहुत से गांववासियों के पास कृषि योग्य जमीन नहीं है, वो दूसरों के खेतों में काम करते हैं उनकी आय सीमित होने के कारण खुद का परिवार चलाना मुश्किल होता है। इसलिए गांवों में लघु उद्योगों का विकास होना आवश्यक है इसके तहत गांव वालों को छोटे-छोटे काम जैसे-मोमबत्ती बनाना, माचिस बनाना व मिट्टी के खिलौने बनाने की शिक्षा दी जा सकती है। जिससे वे आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो सकेंगे। गाँव वालों को स्वावलम्बी बनाने के लिए उनका आत्म बल बढ़ाया जाए और आत्म बल बढ़ाने के लिए उन्हें आत्मा की पहचान, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा की पहचान के साथ सृष्टि चक्र में उनके कर्मों का ज्ञान मिले। इस ज्ञान से उनकी शक्तियों का विकास हो सकता है। इन्सान का आत्म-विश्वास ही आत्मा की प्रथम शक्ति है। कैसी भी विपरीत परिस्थिति में आत्म-निर्भर बनने के लिए आत्म-विश्वास महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, इससे हिम्मत और उमंग-उत्साह बना रहता है। आध्यात्मिक क्रान्ति द्वारा ही सम्पूर्ण ग्राम विकास सम्भव है अर्थात् गाँवों का आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक विकास हो सकता हैं।

''हो पौष्टिक तथा सात्विक अन्न,
बने स्वस्थ और शक्तिशाली मन''

उकठा रोग - दलहनी फसलों का कैंसर

नईमउद्दीन, मो. अकरम एवं पी.आर. साबले

उकठा रोग दलहनी फसलों में लगने वाला एक महत्वपूर्ण रोग है। इस रोग का प्रकोप चना, अरहर एवं मसूर में अधिक होता है। यह रोग एक फफूंदी *फ्यूज़ेरियम* की विभिन्न प्रजातियों द्वारा होता है। चना में उकठा रोग का कारक है *फ्यूज़ेरियम आक्सीस्पोरम फ. स्प. साइसेरि,* अरहर में यह *फ्यूज़ेरियम* उडम तथा मसूर में *फ्यूज़ेरियम ऑक्सीस्पोरम फ.स्प. लेंटिस* द्वारा होता है। दलहनी फसलों को उकठा से बचाना एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य है। उकठा रोग के कारक फफूंदी मृदा में उत्तरजीवित होते हैं इसलिये इस रोग को मृदोढ़ कहा जाता है।

अंग्रेजी में उकठा रोग को *'विल्ट'* कहा जाता है जिसका हिन्दी में अर्थ है मुरझाना। वास्तव में सभी फसलों में उकठा रोग के मुख्य लक्षण सामान्यतः एक समान ही होते हैं। संक्रमित पौधों का ऊपरी भाग मुरझा जाता है जिससे उकठाग्रसित पौधे खेत में दूर से ही पहचाने जा सकते हैं। ऐसे पौधे अंततः पूर्ण रूप से सूख कर मर जाते हैं। उकठा रोग पौधे की किसी भी अवस्था में संक्रमण कर सकता है परंतु सामान्यतः यह या तो फसल की पौध अवस्था (बुवाई के 2-4 सप्ताह तक) या फिर फसल की फूल व फली लगने वाली अवस्था में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। उकठाग्रस्त पौधे को किसी अन्य कारणों से मुरझाये पौधों के लक्षणों के आधार पर पहचाना जा सकता है। उकठाग्रसित पौधे में सामान्यतः जड़ नष्ट नहीं होती परंतु संक्रमण के कारण जड़ें प्रायः भूरी प्रतीत होती हैं। तने के निचले भाग में सवंहन ऊतक में भूरे धब्बे या धारियां देखे जा सकते हैं। तने के निचले भाग (स्तम्भ मूल संधि) की छाल को हटाकर देखने पर भूरी धारियां देखी जा सकती हैं। यह लक्षण उकठाग्रसित चना व अरहर में अधिक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। उकठाग्रस्त अरहर के पौधे में हरे तने पर एक भूरी पट्टी पड़ जाती है जो कि तने में काफी ऊपर तक जाती है। इस पट्टी से उकठा रोग को आसानी से पहचाना जा सकता है। मसूर में उकठाग्रसित पौधे की जड़ें हल्के भूरे रंग की हो जाती हैं। आइये अब जानें, उकठा रोग होता कैसे है? उकठा कारक कवक मृदा में क्लोमाडोबीजाणु के रूप में उत्तरजीवित रहता है तथा परपोषी पौधे के सम्पर्क में आने पर उकठा कारक कवक के क्लेमाटोबीजाणु अंकुरित होकर निवेश द्रव्य की वृद्धि करते हैं। पौधे में संक्रमण जड़ों पर मृदा घर्षण से उत्पन्न घाव के माध यम से होता है। जड़ में प्रवेश के बाद कवक तन्तु दारु ऊतकों में पहुंच जाता है तथा दारू ऊतक की संवहन नलिकाओं में कवक तन्तु का जाल इकट्ठा हो जाता है। जिससे पौधे में जड़ों द्वारा शोषित जल का पौधों के ऊपरी भागों तक प्रवाह रूक जाता है जिसके फलस्वरूप पौधे में मुरझाने (उकठा) के लक्षण उत्पन्न हो जाते

हैं। उकठा कारक फफूंदी द्वारा उत्पन्न जैव विष *(टॉक्सिन)* को भी परपोषी पौधे की उपाचययी क्रियाओं को प्रभावित कर उकठा रोग के लक्षण उत्पन्न करने के लिये ज़िम्मेदार माना जाता है।

फसल समाप्त होने पर संक्रमित पौधों की जड़ें तथा अन्य अवशेष खेत में ही रह जाते हैं। इन अवशेषों पर उपस्थित उकठा कारक फफूंदी फिर से मृदा में बनी रहती है तथा ऐसे खेत में जब अगले *सीज़न* में फसल बोई जाती है तो रोगकारक फिर से फसल में उकठा रोग का संक्रमण करता है। इस प्रकार उकठा कारक फफूंद मृदोढ़ बन उत्तरजीवित रहता है और प्रत्येक वर्ष फसल में उकठा रोग उत्पन्न करता रहता है।

उकठा तथा अन्य मृदाजनित रोगों का नियंत्रण एक कठिन चुनौती है। रोग जनक की मृदोढ़ उत्तरजीविता तथा भूमि के रासायनिक (फफूंदीनाशक) उपचार में आर्थिक व्यय तथा अन्य बाधाऐं इसका मुख्य कारण हैं। अतः इस रोग के नियंत्रण का सबसे सरल एवं उपयुक्त उपाय है रोगरोधी प्रजातियों की खोज एवं उनका उपयोग। दलहन वैज्ञानिकों के अथक प्रयास के फलस्वरूप, मुख्य दलहनी फसलों जैसे चना, अरहर व मसूर में उकठा प्रतिरोधी प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। इन प्रजातियों का प्रयोग कर उकठा रोग द्वारा होने वाली हानि से बचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य उपाय उकठा प्रबन्धन में सहायक पाये गये हैं। जैसे गर्मियों में खेत की गहरी जुताई, उकठाग्रसित खेत में फसल चक्र, दलहनी फसलों के लिये उकठा मुक्त खेत का चयन, बीजों का फफूंदीनाशक रसायन अथवा ट्राइकोडर्मा जैव नियंत्रक द्वारा उपचार, फसल में जस्ता, बोरॉन, गंधक आदि जैसे सूक्ष्म तत्वों का उचित प्रयोग।

उकठा एक ऐसा रोग है जिससे पौधों को संक्रमण होने के बाद बचाना लगभग असम्भव है। अतः यदि इस रोग को फसल का कैंसर कहा जाये तो काई अतिश्योक्ति नहीं होनी चाहिये। फसल को उकठा रोग द्वारा होने वाली हानि से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि फसल बोने से पहले ही इस रोग से बचाव के उपायों की जानकारी कर उनका प्रयोग किया जाये।

फसल में उकठा संक्रमण को नियंत्रण अथवा सीमित करने के लिये अनेक उपायों का सुझाव दिया जाता है। इन उपायों का प्रयोग कर उकठा का एकीकृत प्रबन्धन किया जा सकता हैं। गर्मी में खेत की गहरी जुताई करने से मृदा में उपस्थित उकठा कारक की विभिन्न अवस्थाऐं सतह पर आ जाती हैं तथा गर्मी के माह में अधिक तापमान के चलते यह अवस्थाऐं नष्ट हो जाती हैं तथा मृदा में उकठा कारक का निवेश द्रव्य कम हो जाता है। जिसके चलते ऐसे खेतों में उकठा का संक्रमण कम होता है। चना, अरहर व मसूर बोने के लिये उकठा कारक युक्त खेत का चयन कर उकठा से होने वाली हानि से बचा जा सकता है। बीजों का फफूंदीनाशक रसायन अथवा जैव नियंत्रक द्वारा बीजोपचार उकठा द्वारा होने वाली पौध हानि से बचा जा सकता है। मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी न होने दें। उकठा रोगरोधी प्रजातियों का चयन कर उकठा द्वारा होने वाली हानि से बचा जा सकता है। वास्तव में उकठा रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग उकठा द्वारा होने वाली हानि से बचने का एक अति सरल एवं सस्ता उपाय है।

ध्रुवीय चमत्कार एवं अर्न्तग्रहीय ऊर्जायें

गोविन्द राम, पी.के. कटियार एवं उदय चन्द झा

अंतरिक्ष में 'सौर मण्डल' 'आकाश गंगायें' अनेकानेक हैं। हमारे अपने सूर्य की परिक्रमा कर रहे 'ग्रहपिण्ड' हमारी जीवन यात्रा में एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनसे आने वाले अनुदानों के माध्यम से ही हम सब ही नहीं, सारे प्रकृति परिवार का क्रमबद्ध संतुलित क्रिया-कलाप चल रहा है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव पृथ्वी के उभय यक्षीय व्यवस्थित केन्द्र बिन्दु हैं। अंतरिक्ष से बरसने वाला असीम विकिरण पृथ्वी के इर्द-गिर्द मंडराता रहता है। उसका एक सीमित अंश ही भूतल को स्पर्श कर पाने में सक्षम है। धरती पर छाया 'आयनोस्फियर' का कवच उस विकिरण के घातक प्रभाव से हम सबकी रक्षा करता है। परंतु अर्न्तग्रहीय ऊर्जा जो शक्ति धाराओं की तरह इन विकिरणों के साथ आती है, पृथ्वी पर हमें एक सुनियोजित विधिविधान के माध्यम से सतत प्राप्त होती रहती है। यही हमारे जीवन शक्ति का एवं व्यक्ति समष्टि संबंधों का मूलभूत आधार है। भौतिकी के नियमों के अन्तर्गत यह आदान-प्रदान जिस प्रकार चलता रहता है, उसे देखते हुये आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

'अर्न्तग्रहीय ऊर्जायें' पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में होकर छनी हुई व उपयुक्त एवं आवश्यक मात्रा में ही प्रवेश करती हैं और पृथ्वी को अभिष्ट परिपोषण देने के पश्चात दक्षिणी ध्रुव में होती हुई 'बहिनमिन' कर जाती है। एक सिरे से प्रवेश करके चूहा जिस प्रकार बिल के दूसरे सिरे से बाहर निकल भागता है उसी प्रकार 'अन्तर्ग्रहीय विकिरण धरती के एक सिरे से प्रवेश करता और दूसरे से बाहर निकलता रहता है। उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में एक ऐसी चुम्बकीय छलनी है जो केवल उसी प्रवाह को भीतर प्रवेश करने देती है, जो उपयोगी है। छलनी में बारीक आटा ही छनता है और भूसी ऊपर रह जाती है। ठीक उसी प्रकार, ध्रुवीय छलनी में पृथ्वी के लिये उपयोगी विकिरण आते हैं और शेष को पीछे धकेल दिया जाता है।

उत्तरी ध्रुव पर यह छानने की प्रक्रिया टकराव के रूप में देखी जा सकती है। इस टकराव से एक विलक्षण प्रकार के ऊर्जा कम्पन्न उत्पन्न होते हैं जिसकी प्रत्यक्ष चमक उस क्षेत्र में देखने को मिलती है उसे 'ध्रुव प्रभा' या 'मेरूप्रकाश' कहते हैं। इसका दृश्यमान प्रत्यक्ष रूप में जितना अद्भुत है उससे अधिक रहस्यमय उसका अदृश्य रूप है। इसे 'मेरूप्रकाश' का प्रभाव स्थानीय ही नहीं होता वरन् समस्त भूतलों को यह प्रभावित करता है। यूनानी में समुद्र तल में, वायुमण्डल में, ईथर के महासागर में जो विभिन्न प्रकार की हलचलें होती रहती हैं, चढ़ाव-उतार आते हैं, उनका बहुत कुछ संबंध इस 'मेरूप्रकाश' या 'ध्रुव प्रभा' से होता है। इतना ही नहीं, उसकी हलचलें प्राणधारियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करती है। मनुष्य पर तो उसका प्रभाव विशिष्ट रूप से होता है। सुविज्ञ लोग उस प्रभाव प्रवाह में से अपने लिये उपयोगी तत्वों को खींच लेते हैं और उसे धारण कर लेने में भी सफल होते हैं और उससे असाधारण लाभ प्राप्त करते हैं।

ध्रुव प्रकाश *'सर्चलाइट'* के समान होता है। यह उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में ज्यादा तेज होता है। उत्तरी ध्रुव में कभी-कभी गर्मी भी हो जाती है, दक्षिणी ध्रुव पर नहीं। उत्तरी ध्रुव पर *'एस्कीमो'* रहते हैं, दक्षिणी ध्रुव में *'पेंगुइन पक्षी'* के अतिरिक्त, कुछ नहीं मिलता। यह पक्षी आगन्तुकों से बहुत प्रेममय व्यवहार करते हैं। उत्तरी ध्रुव में पृथ्वी भीतर को धंसी है 14,000 फुट गहरा समुद्र बन गया है जबकि दक्षिणी ध्रुव 19,000 फुट उभरा हुआ है। उत्तरी ध्रुव में उत्तर से बर्फ बहती है, दक्षिण में स्थिर रहती है - दक्षिणी ध्रुव में रात धीरे-धीरे आती है। सूर्य दक्षिणी क्षितिज के लिये बहुत थोड़ी देर के लिये जाता है। सूर्यास्त का दृश्य घंटों रहता है। अस्त हो जाने पर महीनों अंधकार छाया रहता है। केवल मात्र उत्तर की ओर कुछ प्रकाश दिखाई देता है। एक बार ध्रुव यात्री बायर्ड ने यहाँ सूर्य को बिल्कुल हरे रंग का देखा। ऐसा दृश्य इससे पहले किसी ने नहीं देखा था। किरणों की वक्रता के कारण ऐसे विलक्षण दृश्य वहां प्रायः देखने को मिलते रहते हैं।

ध्रुवों पर सूर्य की किरणों की विचित्रता के फलस्वरूप अनेक विचित्रतायें दृष्टिगोचर होती हैं। दूर की वस्तुएं हवा में लटकती हुई जान पड़ती हैं। टीले जितने ऊँचे होते हैं उससे कई गुना पेड़ लगते हैं। कई बार सूर्य एक स्थान पर कई-कई दिखाई देते हैं और इसी प्रकार चन्द्रमा भी। बर्फ में, हवा में भी कई बार सूर्य दिखाई दे जाते हैं। यह सभी कृत्रिम सूर्य वास्तविक जैसे ही लगते हैं।

पृथ्वी का चुम्बकत्व जो कि पृथ्वी के कण-कण को पृथ्वी में पाये जाने वाले जीवन तत्व को प्रभावित करता है। वस्तुतः ब्रह्माण्ड से आने वाले एक प्रकार की शक्ति या तत्व प्रवाह के कारण हैं। यह प्रवाह उत्तर की ओर से आता है इसीलिये उत्तरी ध्रुव क्षेत्र और दक्षिण ध्रुव क्षेत्र दोनों दो ध्रुव होने पर भी गुण-धर्म से अलग-अलग हैं। सामान्यतः दोनों चुम्बकीय ध्रुवों की विशेषतायें एक समान किन्तु एक दूसरे से भिन्न दिशा में होनी चाहिये। किन्तु कई बातों में समानता होने पर भी दोनों की विशेषताओं में बड़ा अन्तर है।

उत्तरी ध्रुव एक गढ्ढा है, दक्षिणी ध्रुव गुमड़ा। उत्तरी ध्रुव की बर्फ दक्षिणी ध्रुव से अधिक गर्म होती है। जल्दी डालने और जल्दी गलने वाली होती है। दक्षिणी ध्रुव उजाड़ क्षेत्र हैं यहाँ कुछ पक्षी जलचरों के अतिरिक्त एक ''पंखहीन मच्छर' भी पाया जाता है वह क्या खाकर जीता है और कैसे इतने भयंकर शीत में जीवन धारण किये रहता है, वैज्ञानिक आज तक इस प्रश्न का समाधान नहीं कर सके।

उत्तरी ध्रुव में जीवन का बाहुल्य है। पौधों तथा जन्तुओं की संख्या करोड़ों तक पहुंचती है। यहाँ दिन और रात समान नहीं होते। 6-6 माह के भी नहीं होते। कई बार रात 80 दिन के बराबर होती है। यह सबसे लम्बी रात होती है। क्षितिज के बीच सूर्य वर्ष में 16 दिन रहता है। यहां चन्द्रमा इतनी तेजी से चमकता है कि उसके प्रकाश में दिन में सूर्य की रोशनी के समान ही काम किया जा सकता है।

कुछ मेरुप्रकाश विस्तृत और आकृतिहीन होते हैं, कुछ सजीव और हलचल करते हुए। कभी वे किरणों की लम्बाई के रूप में जान पड़ते हैं, कभी प्रथा व ज्वाला के रूप में कभी वह दृश्य बदलता हुआ चाप, पड़ी और कोरोना के रूप में होता है तो कभी गुच्छे *सर्चलाइट* के समान। यह रात भर तरह-तरह के दृश्य बदलते हैं, हर और परिवर्तन सूर्य की अपनी आन्तरिक हलचल का प्रतीक होता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण ''अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष अनुसंधान'' के दौरान आया और उसके विलक्षण आकार-प्रकार देखने में आये।

इस अवधि में सूर्य की आन्तरिक हलचल बहुत बढ़ जाती है, यह प्रकाश मुख्यतः चुम्बकीय तूफ़ान होता है जो पृथ्वी की सारी यान्त्रिक क्रिया में क्रान्ति उत्पन्न करके रख देता है।

अनुसंधान के दौरान यह पाया गया है कि सूर्य में जब तेज दमक दिखती है उसके एक दो दिन बाद ही 'मेरू प्रकाश' तीव्र हो उठता है। यह बढ़ी हुई सक्रियता सूर्य-विकिरण तथा कणों की बौछार का ही प्रतीक है। शान्त अवस्था में भी यह संबंध बना रहता है पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता। यह कण अति सूक्ष्म इलेक्ट्रान (ऋण आवेशित कण) जो 200 से लेकर 1000 मील प्रति घण्टे की गति से दौड़ते हुए पृथ्वी तक आते हैं जबकि प्रकाश पृथ्वी तक आने में कुल 8 मिनट लेता है। प्रकाश की गति 18,00000 मील/सेकेण्ड है इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी सूर्य की विद्युतीय शक्ति से सम्बद्ध है पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक की तरह है। चुम्बकत्व पार्थिव कणों में विद्युत प्रवाह के कारण उत्पन्न होता है। इससे स्पष्ट है पृथ्वी की चुम्बकीय क्षमता सूर्य के ही कारण है। यह कण पृथ्वी से हजारों मील ऊपर ही पृथ्वी के क्षेत्र द्वारा पृथ्वी के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों की ओर मोड़ और प्रवाहित कर दिये जाते हैं।

मार्च तथा सितम्बर में (चैत तथा क्वार) में जबकि पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है 'मेरु प्रकाश' अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ता है जबकि अन्य समय गलत दिशा के कारण प्रकाश लौट कर ब्रह्माण्ड में चला जाता है। यही वह अवधि होती है जब पृथ्वी में फूल, फलों की वृद्धि और ऋतु परिवर्तन होता है। उस समय सूर्य की यह विद्युत धाराएँ स्पष्ट और अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ती हैं। प्रयोगों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों में विद्युत धारा की चादरें जैसी ढकी रहती है।

''ध्रुव प्रभा' एवं 'मेरुप्रकाश' की धरती पर होने वाली विभिन्न हलचलों एवं परिवर्तनों से क्या संबंध है उनका अन्वेषण करने में विज्ञानवेत्ता संलग्न हैं वे क्रमशः इस लक्ष्य पर पहुँचते जा रहे हैं कि मनुष्य के निजी पुरुषार्थ का महत्व एक बहुत छोटी सीमा तक ही सीमित है। बहुत करके तो अन्तरिक्ष और भूगोल के बीच चल रहे आदान-प्रदान पर ही निर्भर रहता है। धातुएँ, वनस्पति, ऋतु परिवर्तन, जलवायु जैसे महत्वपूर्ण तत्वों पर इन्हीं अदृश्य अभिवर्षणों का प्रभाव रहता है। इतना ही नहीं वरन् वे प्राणियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करती हैं। उस दृष्टि से स्वतंत्र समझा जाने वाला प्राणी जगत प्रकृति की सूक्ष्म हलचलों की कठपुतली मात्र बनकर एक प्रकार से नियति नियंत्रित ही बन जाता है, ऐसा कहा जा सकता है। कभी-कभी यह स्थिति दयनीय प्रतीत होती है कि प्राणियों को नियति की कठपुतली मात्र बनकर रहना पड़े। अन्तर्ग्रहीय प्रवाह उसके सामने जो भी परिस्थितियां उत्पन्न करे, उसके सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।

उक्त प्रकृतिगत जानकारियों के अतिरिक्त, वैज्ञानिक स्तर पर विभिन्न आयामों पर गहन अध्ययन प्रगति पर है। रूस, अमेरिका एवं भारत के मूर्धन्य वैज्ञानिक, ब्रह्माण्ड के कवच में व्याप्त अनमोल रश्मियों की खोज में सतत् प्रयत्नशील हैं जिससे 'खगोल विज्ञान' को अनेकों आशाओं के किरणों ने बांध रखा है।

असत्य भाषण पाप हैं, और निन्दा महापाप। ***रविन्द्र नाथ ठाकुर***

कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम 2001

बंसा सिंह एवं सुनील त्रिपाठी

चयन, संरक्षण और खेती की लम्बी प्रक्रिया के दौरान किसानों ने हर किस्म के बारे में व्यापक ज्ञान अर्जित किया है। इस ज्ञान में किस्म की विशिष्ट मौसम व परिस्थितियों में उपयुक्तता, विभिन्न मौसमों में परिपक्वता अवधि, इसकी बीमारियों, कीटों व प्राकृतिक प्रकोपों के विरुद्ध प्रतिरोधकता, अलग-अलग मिट्टी के लिए इसकी उपयुक्तता, इसकी उपज की गुणवत्ता, इसके विभिन्न उपयोग इत्यादि शामिल हो सकता है। किसानों के पास हर किस्म के बारे में इस ज्ञान आधार जो फसल पौधों की आनुवांशिक विविधता के रूप में है, आधुनिक वैज्ञानिक सुधार के लिए अत्यधिक मूल्यवान है। किसानों का पादप आनुवंशिक विविधता में योगदान वैज्ञानिकों द्वारा आधुनिक पादप किस्में विकसित करने के समान है। इसलिए, जिस प्रकार वैज्ञानिकों का उनके द्वारा नई विकसित किस्म पर अधिकार होता है, उसी प्रकार किसानों को उनके द्वारा विकसित की गई किस्मों पर उनके अधिकारों की रक्षा के लिए भारत सरकार ने 2001 में कानून बनाया जिसे 'पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001' के नाम से जाना जाता है। पादप किस्म संरक्षण और किसान अधिकार को लागू करने के मुख्यतः चार कारण हैं;

विश्व व्यापार संगठन के तहत भारत द्वारा हस्ताक्षर किये गये समझौते की पूर्ति में पादप किस्मों के विकास के साथ जुड़े बौद्धिक संपदा की रक्षा करना।

नयी पादप किस्मों को विकसित करने के लिए किसानों द्वारा संरक्षित पादप आनुवंशिक संसाधनों को उपलब्ध कराने में योगदान से उत्पन्न होने वाले अधिकार को पहचान दिलाना।

कृषि विकास में बढ़ावा देने के लिये पादप प्रजनन में सार्वजनिक और निजी निवेश को प्रोत्साहन करने के लिये।

बीज उद्योग को बढ़ावा देकर किसानों को उच्च गुणवत्ता के बीज और रोपण सामग्री प्रदान करने के लिये।

पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001

कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू है। भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है एवं कृषि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान कर रही है। कृषकों को उनके कृषि कार्य, अनुभवों

एवं योगदान के आधार पर पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 के द्वारा उनके अधिकारों का संरक्षित किया गया है।

उद्देश्य

पौधा किस्मों, कृषकों और प्रजनकों के अधिकार की सुरक्षा और पौधों की नई किस्मों के विकास को बढ़ावा देने के लिए एक प्रभावी प्रणाली की स्थापना करना।

नई पौधा किस्मों के विकास के लिए पादप आनुवंशिक संसाधन उपलब्ध कराने तथा किसी भी समय उसके संरक्षण व उसके सुधार में किसानों द्वारा दिए गए योगदान के संदर्भ में किसानों के अधिकारों को मान्यता देना व उन्हें सुरक्षा प्रदान करना।

देश के कृषि विकास में तेजी लाना, पादप प्रजनकों के अधिकारों की सुरक्षा करना, नई पौधा किस्मों के विकास के लिए सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास के लिए निवेश को प्रोत्साहित करना।

देश में बीज उद्योग की प्रगति को सुगम बनाना जिससे किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीजों तथा रोपण सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके।

प्राधिकरण के सामान्य कार्य

नई पौधा किस्मों, अनिवार्य रूप से व्युत्पन्न किस्मों, विद्यमान किस्मों का पंजीकरण करना।

नई पादप प्रजातियों के लिए डीयूएस (विशिष्टता, एकरूपता और स्थायित्व) परीक्षण दिशानिर्देशों का विकास करना।

पंजीकृत किस्मों के गुणों का विकास व उनका प्रलेखन करना।

पौधों की सभी किस्मों के लिए अनिवार्य सूची पत्रीकरण (कैटालॉगिंग) की सुविधा प्रदान करना।

कृषकों की किस्मों का प्रलेखन, सूचीकरण तथा उनका सूची पत्रीकरण करना।

उन कृषकों, कृषक समुदायों, विशेषकर जनजातीय और ग्रामीण समुदाय को मान्यता प्रदान करना और पुरस्कृत भी करना जो कि विशेष रूप से महत्वपूर्ण पौधों व उनके वन्य संबंधियों से जुड़े पादप आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण, सुधार और परिरक्षण के कार्य में संलग्न है।

पौधा किस्मों के राष्ट्रीय रजिस्टर का रखरखाव करना।

राष्ट्रीय जीन बैंक का रखरखाव करना।

सिद्धांत

पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 में निम्न सिद्धांतों को अपनाते हुए पौधा किस्मों (सूक्ष्मजीवों को छोड़कर) की सुरक्षा के लिए एक वृहत और प्रभावी प्रणाली अपनाई गई है। यह प्रणाली निम्न सिद्धांतों का पालन करती है;

नयाः पौधे की प्रजाति नई होनी चाहिये ।

विशिष्टताः पौधे का कम से कम एक गुण ज्ञात पौधों से विशिष्ट होना चाहिये।

समरूपताः पौधे को पर्याप्त समरूपता प्रदर्शित करनी चाहिये।

स्थिरताः बार बार प्रजनन के दौरान पौधे में स्थिरता बनी होनी चाहिये।

अधिनियम के अंतर्गत अधिकार

पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 के अंतर्गत तीन प्रकार के अधिकारों को सम्मिलित किया गया हैः-

1. प्रजनकों के अधिकार

प्रजनकों को सुरक्षित किस्म उत्पन्न करने, उसकी बिक्री करने, उसका विपणन व वितरण करने, आयात व निर्यात का एकमात्र अधिकार होगा। अधिकारों के उल्लंघन के मामले में कानूनी सहायता के लिए प्रजनक, एजेंट व लाइसेंसी नियुक्त करने के साथ साथ कानूनी अधिकारों का भी उपयोग कर सकता है।

2. अनुसंधानकर्ताओं के अधिकार

अनुसंधानकर्ता प्रयोग या अनुसंधान करने के लिए अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत किसी भी किस्म का उपयोग कर सकता है। इसमें कोई अन्य किस्म विकसित करने के लिए किसी किस्म को आरंभिक स्रोत के रूप में उपयोग करना भी शामिल है, लेकिन यदि सामग्री का बार-बार उपयोग करना पड़े तो इसके लिए पंजीकृत प्रजनक से पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता होती है।

3. कृषकों के अधिकार

जिस किसान ने कोई नई किस्म खोजी या विकसित की हो उसे उसी प्रकार अपनी किस्म को सुरक्षा प्रदान करने और पंजीकृत करने का अधिकार है, जिस प्रकार प्रजनक अपनी किस्म को पंजीकृत कराकर सुरक्षा प्रदान करता है।

कोई भी किसान पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 के अंतर्गत संरक्षित किस्म के बीज सहित अपने उत्पाद को उसी प्रकार बचाकर रख सकता है, उपयोग में ला सकता है, बो सकता है,

पुनः बो सकता है, उसका विनिमय कर सकता है, साझीदारी कर सकता है या बेच सकता है, जैसा कि वह अधिनियम के लागू होने के पूर्व कर सकता था, लेकिन इसमें शर्त यह है कि कोई किसान पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 2001 के अंतर्गत सुरक्षित किस्म के ब्रांड युक्त बीजों की बिक्री नहीं कर सकता।

किसान आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भू. प्रजातियों तथा उनके वन्य संबंधियों के पादप आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए मान्यता प्रदान किए जाने के साथ ही पुरस्कृत किए जाने के भी पात्र हैं। अधिनियम, 2001 की धारा 39(2) के अंतर्गत किसी किस्म के निष्पादन न देने पर किसानों को क्षतिपूर्ति किए जाने का भी प्रावधान है। किसानों को प्राधिकरण अथवा पंजीकार अथवा न्यायाधिकरण अथवा उच्च न्यायालय में कोई भी मुकदमा दाखिल करने के लिए इस अधिनियम के तहत कोई शुल्क भी अदा नहीं करना होता है।

प्राधिकरण द्वारा निम्न फसल प्रजपतियों को सुरक्षित किया जा सकता हैः-

गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, चना, अरहर, मूँग, उर्द, मटर, सेम/राजमा, मसूर, द्विगुणित कपास (2 प्रजातियां), चतुर्गुणित कपास (दो प्रजातियां), पटसन (2 प्रजातियां), गन्ना, अदरक, हल्दी, भारतीय सरसों, करन राई, तोरिया, गोभी सरसों, सूरजमुखी, कुसुम, अरण्ड, तिल, अलसी, मूँगफली, सोयाबीन, काली मिर्च, छोटी इलायची, गुलाब, गुलदाउदी, आम, आलू, बैंगन, टमाटर, भिण्डी, फूलगोभी, बंदगोभी, प्याज, लहसुन, गेहूं की ड्यूरम, डाइकोकम तथा ट्रिटिकम प्रजातियां, ईसबगोल, मेंथॉल पुदीना, दमस्क गुलाब, बारहमासी तथा ब्राह्मी।

पंजीकरण

कोई भी किस्म यदि विशिष्टता, एकरूपता व स्थायित्व (डीयूएस) के मानदंडों को अनिवार्य रूप से पूरा करती है तो उसे अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत किए जाने की पात्रता प्राप्त है। केन्द्र सरकार किस्मों के पंजीकरण के उद्देश्य से गुणों तथा प्रजातियों को विशिष्टीकृत करते हुए शासकीय राजपत्र में अधिसूचना जारी करती है। अब तक केन्द्र सरकार ने पंजीकरण के उद्देश्य से 54 फसल प्रजातियों को अधिसूचित किया है। पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण ने व्यक्तिगत फसल प्रजातियों के लिए 'प्रजाति विशिष्ट विशिष्टता, एकरूपता तथा स्थायित्व परीक्षण के लिए दिशानिर्देश' या 'विशिष्ट दिशानिर्देश' विकसित किए हैं।

पंजीकरण के लिए शुल्क

पौधा किस्मों के पंजीकरण हेतु आवेदन के साथ प्राधिकरण द्वारा निर्धारित पंजीकरण शुल्क दिया जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार की किस्मों के लिए पंजीकरण शुल्क निम्नानुसार है :

क्र.सं	किस्म का प्रकार	पंजीकरण शुल्क
1.	बीज अधिनियम, 1966 की धारा 5 के अंतर्गत अधिसूचित विद्यमान किस्म	रु. 1,000/
2.	नई किस्म/अनिवार्य रूप से व्युत्पन्न किस्म (ईडीवी)	रु. व्यक्तिगत 5,000/ रु. शैक्षणिक 7,000/ रु. वाणिज्यिक 10,000/
3.	वह विद्यमान किस्म जिसके बारे में सामान्य ज्ञान है (वीसीके)	व्यक्तिगत रु. 2,000/ शैक्षणिक रु. 3,000/ वाणिज्यिक रु. 5,000/

राष्ट्रीय जीन बैंक

प्राधिकरण ने पंजीकृत किस्मों के प्रजनकों द्वारा प्रस्तुत पैतृक वंशक्रमों सहित बीज सामग्री को स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय जीन बैंक स्थापित किया है।

राष्ट्रीय जीन बैंक में भंडारित बीज का उपयोग अनिवार्य लाइसेंसिंग के प्रावधानों को लागू करने हेतु जब कभी भी आवश्यकता पड़े या विवाद उठे, तब किया जाता है।

राष्ट्रीय जीन बैंक में इस प्रकार बीज के जमा होने से बाजार में धोखाधड़ी से छुटकारा मिलेगा तथा अधिकारों का उल्लंघन भी नहीं होगा, क्योंकि बैंक के पास जमा बीज को तथ्यों के सत्यापन के लिए बाहर निकाला जा सकता है।

जब स्वीकृत किए गए पंजीकरण की अवधि समाप्त हो जाती है तो सामग्री स्वतः ही जन-सामान्य द्वारा उपयोग के लिये उपलब्ध हो जाती है।

राष्ट्रीय जीन निधि

प्राधिकरण द्वारा एक राष्ट्रीय जीन निधि की भी स्थापना की गई है जिसके कार्य निम्नवत् हैं;

किसी किस्म के प्रजनक से अथवा अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत किसी अनिवार्य रूप से व्युत्पन्न किस्म अथवा ऐसी किस्म की रोपण सामग्री या अनिवार्य रूप से व्युत्पन्न किस्म, जैसा भी मामला हो, से निर्धारित विधि से प्राप्त होने वाले लाभ में भागीदारी सुनिश्चित करना।

रॉयलटी के माध्यम से प्राधिकरण को देय वार्षिक शुल्क का रख रखाव करना।

प्रजनकों द्वारा जमा की गई क्षतिपूर्ति की राशि और किसी राष्ट्रीय अथवा अंर्तराष्ट्रीय संगठन और अन्य स्रोतों से प्राप्त योगदानों का हिसाब रखना।

जीन निधि में एकत्रित धनराशि का उपयोग निम्न के लिए किया जा सकता हैः

लाभ में भागीदारी के द्वारा अदा की गई कोई भी राशि।

कृषक/कृषकों के समुदाय को देय क्षतिपूर्ति में।

स्वःस्थाने व बहिःस्थाने संकलनों सहित आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण व टिकाऊ उपयोग को सहायता देने पर होने वाला व्यय तथा ऐसे संरक्षण व टिकाऊ उपयोग को सम्पादित करने के लिए पंचायतों की क्षमता का सबलीकरण करने में।

लाभ में भागीदारी से संबंधित योजनाओं पर होने वाले व्यय में।

लाभ में भागीदारी

लाभ में भागीदारी कृषकों के अधिकारों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। अधिनियम की धारा 26 में प्रावधान है कि भारत के नागरिकों या संस्था अथवा गैर-सरकारी संगठनों अथवा भारत में स्थापित संगठनों द्वारा लाभ में भागीदारी के दावे प्रस्तुत किए जा सकते हैं। किसी किस्म के विकास में दावेदार के आनुवंशिक संसाधन के उपयोग की सीमा और प्रगति के साथ-साथ उस किस्म की बाजार में मांग तथा उसके वाणिज्यिक उपयोग के अनुसार प्रजनक को जीन निधि में निर्धारित राशि जमा करानी होगी तथा जमा की गई यह राशि राष्ट्रीय जीन निधि से दावेदार को अदा की जाएगी।

क्षतिपूर्ति हेतु प्रावधान

प्राधिकरण द्वारा भारतीय पौधा किस्म जरनल का प्रकाशन भी किया जाता है, जिनमें लाभ में भागीदारी के दावों को आमंत्रित करने के उद्देश्य से प्रमाण पत्र के अंश भी प्रकाशित होते हैं। कोई कृषक, कृषकों का समूह अथवा कृषकों का संगठन अधिनियम की धारा 39(2) के अंतर्गत क्षतिपूर्ति के दावा हेतु आवेदन कर सकता है।

क्षतिपूर्ति हेतु दावा के आवेदन की प्रक्रिया

जिस पंजीकृत किस्म के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति दावा प्राप्त होता है, प्राधिकरण द्वारा उसके पंजीकृत प्रजनक को सर्वप्रथम नोटिस भेजा जाता है।

उपरोक्त उप नियम (1) के अंतर्गत प्रजनक, प्राधिकरण से नोटिस प्राप्त होने के तीन माह के अन्दर प्रथम अनुसूची के प्रारूप पी वी- 26 में प्रतिवाद प्रस्तुत कर सकता है। प्रजनक, यदि क्षतिपूर्ति हेतु नोटिस प्राप्त होने की तिथि से तीन माह के अन्दर प्रतिवाद प्रस्तुत करने में असफल होता है अथवा अवहेलना करता है, ऐसी दशा में यह मान लिया जाता है कि प्रजनक उक्त दावा में प्रतिवाद नहीं प्रस्तुत करना चाहता है और

वह दावा प्राधिकरण द्वारा नियमानुसार निर्धारित कर दिया जाएगा। प्राधिकरण, प्रजनक से प्रतिवाद प्राप्त होने पर दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करता है तथा उचित पाए जाने पर प्रजनक को कृषक, कृषकों के समूह अथवा कृषकों के संगठन, जैसी भी स्थिति हो, क्षतिपूर्ति हेतु निर्देशित कर सकता है।

अनजाने में हुए किसी उल्लंघन के प्रति सुरक्षा

अधिनियम के अंतर्गत दिए गए अधिकारों का अनजाने में हुए किसी भी प्रकार के उल्लंघन की दशा में उल्लंघन नहीं माना जाएगा। अधिनियम की धारा 65 में उल्लेखित किसी भी उल्लंघन के लिए न्यायालय किसी भी वाद में छूट प्रदान कर सकता है, जो पहले न्यायालय द्वारा न दी गयी हो तथा न ही किसी ऐसे संज्ञान को इस अधिनियम द्वारा अपराध माना जाएगा जिसके बारे में कृषक द्वारा न्यायालय के समक्ष यह सिद्ध कर दिया जाये कि सम्बंधित उल्लंघन के समय उसे यह जानकारी नहीं थी कि इस प्रकार का अधिकार पहले से ही मौजूद है।

किसानों के हितों व अधिकारों की रक्षा के लिये बनाये गये इस कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत कोई भी किसान अथवा किसानों का समूह अपने अधिकारों की रक्षा के लिये तथा इसका लाभ उठाने के लिये प्राधिकरण में नीचे दिये गये पते पर सम्पर्क कर सकता है :

अध्यक्ष
पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण
भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, कृषि एवं सहकारिता विभाग
एनएएससी काम्प्लैक्स, डीपीएस मार्ग, निकट टोडापुर गाँव
नई दिल्ली 110 012, टेलीफोनः +91-11-25848127
फैक्सः +91-11-25840478

जीन रूपान्तरित फसलों का भूमण्डलीय आंकलन

मनोज कुमार, आलोक शुक्ला, जमाल अन्सारी, अजीत प्रताप सिंह, सुभोजीत दत्ता एवं आलोक दास

पराजीनी फसलें मुख्य रूप से जीन रूपान्तरित फसलें होती है। इन फसलों में जीन का रूपान्तरण आनुवंशिक अभियांत्रिकी तकनीक द्वारा किया जाता है। पराजीनी फसलों के आनुवंशिक पदार्थ *(डी.एन.ए.)* में बदलाव किया जाता है जिससे फसलों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है और आवश्यक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है। पराजीनी फसलों का कृषि में महत्वपूर्ण योगदान है। विभिन्न दलहनी फसलों जैसे चना, अरहर आदि को नष्ट करने वाला *हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा* नामक कीट होता है। यह फली भेदक कीट मुख्यतः फलियों को खाकर उन्हें नष्ट कर देता है जिससे किसानों को भारी मात्रा में नुकसान होता है। इस समस्या से निजात पाने के लिए वैज्ञानिकों ने *बैसिलस थुरिजिएन्सिस* नामक जीवाणु के क्राई जीन को फसलों में आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा रूपान्तरित किया है। ये पराजीनी फसलें कीट प्रतिरोधी होती हैं। एक आंकलन के अनुसार, पराजीनी फसलें पिछले सोलह वर्षों से विश्व के विभिन्न देशों में उगाई जाती हैं। पूर्व के सोलह वर्षों (1996-2011) में व्यवसायिकी ने पराजीनी फसलों को तेजी से अपनाया है जिससे किसानों को भारी लाभ हुआ है। सन् 2011 में 16 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में पराजीनी फसलें उगाई गई। ये फसलें मक्का, सोयाबीन, कपास, सरसों, चुकन्दर, अल्फा-अल्फा, पपीता, कुम्हड़ा, पापुलर, टमाटर, शिमला मिर्च है।

विश्व भर में 10 लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल में पराजीनी फसलों का उत्पादन करने वाले मुख्यतः 10 देश हैं। उच्चतम 10 देशों में सर्वाधिक पराजीनी फसलों उत्पादित करने वाला देश अमेरिका है जिसके सर्वाधिक क्षेत्रफल 695 लाख हेक्टेयर में पराजीनी फसलें उत्पादित की जाती हैं। अमेरिका में उत्पादित की जाने वाली पराजनी फसलें मक्का, सोयाबीन, कपास, सरसों, चुकन्दर, अल्फा-अल्फा (गाय-भैसों का चारा), पपीता, कुम्हड़ा है। द्वितीय स्थान ब्राजील का है जिसके 366 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में पराजीनी फसलें उगायी जाती है। इसकी मुख्य फसलें सोयाबीन, मक्का और कपास हैं। पराजीनी फसलें उत्पादित करने वाले अन्य देश अर्जेन्टीना, कनाडा, भारत, चीन, पैरागुई, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान व यूरुगई है जिनका क्षेत्रफल क्रमशः 239 लाख हेक्टेयर (सोयाबीन, मक्का, कपास), 116 लाख हेक्टेयर (सरसों, मक्का, सोयाबीन, चुकन्दर), 108 लाख हेक्टेयर (कपास), 40 लाख हेक्टेयर (कपास, पपीता, पापुलर, टमाटर, शिमला मिर्च), 34 लाख हेक्टेयर (सोयाबीन, मक्का, कपास) 29 लाख हेक्टेयर (मक्का, सोयाबीन, कपास), 28 लाख हेक्टेयर (कपास) व 14 लाख हेक्टेयर (सोयाबीन, मक्का) हैं। अन्य देश जिनमें पराजीनी फसलें उगाई जाती हैं, वे देश बोलिविया,

फिलीपिन्स, आस्ट्रेलिया, बुर्किनाफासो, म्यामार, मेक्सिको, स्पेन, चिले, कोलम्बिया, होन्डुस्स, सूडान, पोर्तुगाल, चेक रिपब्लिक, क्यूबा, इजिप्ट, कोस्टरिका, रोमानिया तथा स्लोवाकिया हैं।

बी.टी. कपास : कपास की खेती मानव सभ्यता के इतिहास में सात हजार सालों से होती आई है लेकिन इसमें पिछली सदी के अन्तिम दशक में एक नया अध्याय तब लिख गया जब महाराष्ट्र स्थित माहिको हायब्रिड सीड कम्पनी और अमेरिकन कम्पनी मोनसेंटो ने साझेदारी की। बी.टी. कपास का विकास बी.टी. नामक एक जीवाणु के सहयोग से किया जाता है। यह बी.टी. एक विषैले पदार्थ का निर्माण करता है जिसके कारण ये पौधे कीट प्रतिरोधी होते हैं। पिछले दस वर्षों में भारत दुनिया में दूसरा सबसे अधिक कपास उत्पादन करने वाला देश बन गया है। देश के कपास के खेतों में 90 फीसदी हिस्से पर बी.टी. कपास की खेती होती है।

भारत में बी.टी. कपास का उत्पादन : सन् 1999 में मोनसेंटो बी.टी. कपास लेकर भारत आई। माहिको ने बी.टी. कपास का छोटे पैमाने पर पहला खेत परीक्षण 1999 में तथा 2000 में बड़े पैमाने पर किया। बी.टी. कपास का रकबा और किस्में भारत के कुल 9 राज्यों पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और मध्य प्रदेश में होती हैं। सन् 2002-03 में जहाँ बी.टी. कपास का क्षेत्रफल मात्र 0.29 लाख हेक्टेयर था वह 2010-11 में बढ़कर 95.50 लाख हेक्टेयर हो गया। 2002 में जहाँ बी.टी. जनित संकर किस्मों की संख्या मात्र 2 थी, वो 2011 में बढ़कर 1090 हो गयी है।

पराजीनी फसलों का टिकाऊ विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। ये फसलें उत्पादकता बढ़ाकर और आर्थिक लाभ के द्वारा भोजन, आहार रेशों की सुरक्षा तथा अधिक भोजन मुहैया कराकर मदद करती हैं। ये फसलें जैवविविधता संरक्षण, गरीबी और भुखमरी से राहत में मदद करके तथा जलवायु परिवर्तन को कम करके कृषि में योगदान करती हैं।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं ही निर्माता है। ***स्वामी रामतीर्थ***

पराजीवी पौधों का अतीत, वर्तमान एवम् भविष्य

अजीत प्रताप सिंह, सुभोजित दत्ता एवं पी. नंदीशा

जैव प्रौद्योगिकी इक्कीसवीं शताब्दी के लिये वरदान के रूप में उभरकर सामने आई है। जैव प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत समाज के काम के लिये औषधीय, निदानात्मक, कृषि संबंधी पर्यावरणीय और अन्य उत्पाद तैयार करने के लिये जीवित कोशिकाओं और कोशिकाओं द्वारा उत्पादित सामग्री का प्रयोग इस सम्भावना के साथ किया जाता है कि व्यापक रूप से उपलब्ध नवीकरणीय संसाधनों से जीवन के लिये अनिवार्य पदार्थ और मिश्रण उत्पादित किये जा सकें। यह एक परस्पर संबद्ध विज्ञान तकनीकी है जिसके दायरे में न केवल जीव विज्ञान शामिल है बल्कि भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, गणित और अभियांत्रिकी सहित अन्य विषय भी शामिल है। जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से अधिक पैदावार एवं कीट प्रतिरोधी वाली फसलें भी तैयार की जा रही हैं जिसमें अरहर एवं चना भी शामिल है।

फली भेदक कीट के प्रति प्रतिरोधकता विकसित करने के लिये *बेसिलस थूरिजिएन्सिस* का निवेशन किया जाता हैं। *बैसिलस थूरिजिएन्सिस* को 30 विभेदों में बाँटा गया है। परंतु सीरम प्रारूप का इसकी कीटनाशी क्रिया से कोई संबंध नहीं है। यह बीजाणुजनन के समय पैराबीजाणीय क्रिस्टलीय टाक्सिन उत्पादित करता है। इसी क्रिस्टलीय टाक्सिन के कारण कीटनाशक होता है। क्रिस्टल प्रोटीन *क्राईजीन* द्वारा कोडित होता है। जिसके 16 विकल्पी ज्ञात है। अधिकांश क्राई जीन संयुग्मनशील प्लाज्मिड में पाये जाते हैं जब कोई कीट इन बीजाणुओं को अर्न्तग्रहीत करता है तब महपांत्र के क्षारीय वातावरण में प्रोटिएज निष्क्रिय क्रार्ड प्रोटीन को विदलित कर देता है। विदलन के बाद 60 के डी ए का अविष खंड प्राप्त होता है। बड़े क्राई प्रोटीनों में एन-सिरे के लगभग आधे भाग में स्थित होता है व सी-सिरे का आधार भागक क्रिस्टलन को निर्धारित करता है बड़े क्राई प्रोटीन अणु द्विपिरामिडीय आकार के क्रिस्टल बनाते है। छोटे क्राई प्रोटीनों में इस आकार के क्रिस्टल नहीं बनते हैं। यह अविष खंड महपांत्र उपकला की ब्रुस वार्डर कोशिकाओं की सतह पर उपस्थित उच्चबंधुत्वग्राही अणुओं से जुड़ जाता है जिससे इन कोशिकाओं की झिल्ली में छिद्र बन जाते हैं। जिससे ये कोशिकायें फूलती जाती है व अंततः लयन हो जाता है। परिणामस्वरूप कीटों की मृत्यु हो जाती हैं। विभिन्न क्राई प्रोटीनों की कीटों के लिये विशिष्टता मुख्य रूप से उपकला ब्रुस-बार्डर कोशिकाओं में उपस्थित ग्राटी अणुओं की विशिष्टता के कारण ही होती है। इसके अलावा क्राई प्रोटीनों का प्रोटीन लयन भी विशिष्टता का आधार हो सकता है।

अमेरिका की मानसेन्टो कम्पनी ने कपास में क्राई जीन को समावेशित कर बोलगार्ड नामक प्रजाति विकसित की है। इसी प्रकार ब्राजील ने बायोटे काटन नामक प्रजाति का पेटेन्ट कराया है जिसमें अपेक्षाकृत

कम लागत में अच्छी गुणवत्ता वाली कपास पैदा की जाती है। तेल एवं प्रोटीन उत्पादन में अमेरिका एवं ब्राजील में बायोटेक सोयाबीन विकसित कर सर्वाधिक लाभ प्राप्त किया है। पोषण की दृष्टि से अति उत्तम खाद्य पदार्थ गोल्डन राइस को जर्मनी, चीन, जापान, अमेरिका, इण्डोनेशिया, श्रीलंका तथा भारत ने संयुक्त रूप से विकसित कर पराजीनी फसलों के व्यवसायीकरण में अग्रणी भूमिका निभाई है। इसी तरह क्राई जीन को आलू एवं मक्का में भी समावेशित कर क्रमशः न्यूलीफ एवम् मैक्सिमाइजर नामक बायोटेक प्रजातियों का अमेरिका, अर्जेन्टाइना तथा आस्ट्रेलिया ने विकसित किया है। मक्का में ट्रिप्टोफैन नामक सुपाच्य अमीनो एसिड से प्रोटीन की गुणवत्ता का स्तर बढ़ाकर अमेरिका ने पेटेन्ट कराया है। टमाटर की एक किस्म को फ्लेवर सेवर नाम से अमेरिका में व्यापारिक स्तर पर उगाया जा रहा हैं।

प्रोटीएज निरोधक जीन का निवेशन : ये उपापचयी निरोधी प्रोटीन्स है, जो कि कीटों को नष्ट करने में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणतः लोबिया में ट्रिपसिन निरोधक सीपीटीआई जीन उपस्थित होता है, जो कि उसके बीजों को घुन कीटों के प्रति सुरक्षा प्रदान करता है। सीपीटीआई जीन को पृथक कर Camv वाहक के उपयोग द्वारा तम्बाकू में निवेशित करवाकर तम्बाकू के पराजीनी पौधे तैयार किये गये हैं। इसी प्रकार सेरीन प्रोटीएज निरोधी, एप्रोटिसिन, सिस्टीन प्रोटीएज निरोधी, प्रोटीनेज निरोधी 11 एवं लेक्टिन को निर्मित करने वाले जीनों को पौधों में निवेशित करवाकर उनमें कीट प्रतिरोधकता विकासित की गई है।

एक आंकलन के अनुसार, दलहनी फसलों में लगभग 15% नुकसान फलीभेदक कीटों द्वारा होता है। इससे लगभग 3 मिलियन टन दलहनी फसलों को नुकसान पहुँचाता है जिसका मूल्य ₹ 50,000/- मिलियन तक होने की सम्भावना है। इस नुकसान को रोकने के लिये पराजीनी पौधों को उगाना आवश्यक है। साथ ही साथ भारत सरकार को पराजीनी खाद्य फसलों को उगाने के रोक को हटाने पर विचार करना चाहिये। पराजीनी फसलों का मानव स्वास्थ्य पर कोई विपरीत असर नहीं होता है। इससे देश की पोषक सुरक्षा के मानक को सुधारने में मदद मिलेगी।

प्रसन्नता एक अनमोल खजाना है, छोटी-छोटी बातों पर उसे न लुटने दें। ***स्वामी विवेकानन्द***

दलहन में हरित क्रांति का आगाज

अमरेन्द्र प्रताप सिंह, इन्द्र प्रकाश सिंह, फणीन्द्र सिंह एवं वासुदेव सरकार

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ की अधिकतर जनसंख्या शाकाहारी है। दालें शाकाहारी जनसंख्या के आहार में प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त, वे ऊर्जा, खनिज लवण एवं कुछ जीव तत्व (विटामिनों) का बहुमूल्य स्रोत हैं। पोषण के अतिरिक्त, दलहनी फसलें भूमि में जैविक नत्रजन को स्थिर करके उनकी उर्वरता को पुनः स्थापित करती हैं तथा अपनी गहरी जाने वाली जड़ों द्वारा भूमि संरक्षण व उनके भौतिक गुणों में सुधार करती हैं।

अरहर भारत की महत्वपूर्ण दलहनी फसल हैं। विश्व का लगभग 85 प्रतिशत उत्पादन तथा उपयोग भारत में ही होता है। अरहर लोगों के भोजन तथा लोगों के पोषक तत्वों की सुरक्षा के लिये प्रमुख फसल है।

पिछले छः दशकों में दलहनी फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता लगभग स्थिर रही है। जबकि जनसंख्या कई गुना बढ़ गई हैं। इसके परिणामस्वरूप दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 64 ग्राम (1951 से 1956) से तेजी से घटकर वर्तमान में 37 ग्राम रह गई हैं। जबकि खाद्य एवं कृषि संगठन/विश्व स्वास्थ्य संगठन की संस्तुति कम से कम 80 ग्राम प्रति दिन प्रति व्यक्ति है।

ऐसे में भारतीय कृषि वैज्ञानिक, प्रोफेसर नागेन्द्र कुमार सिंह और उनकी टीम ने अरहर के जीनोम संरचना का पता लगाकर अरहर के रास्ते दलहन में हरित क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया हैं। यह कोई कोरी हवाई बात नहीं है। चावल और मक्का की जैविक संरचना के बाद उनका कितना उत्पादन बढ़ चुका है। यह बात किसी से छिपी हुई नहीं हैं। मक्का का इतना अधिक उत्पादन विश्व में होता है कि जैवईंधन बनाया जा सकता है। अरहर की इस नई खोज से अरहर की फसल पकने में कम समय लगेगा। वहीं उनमें सूखे, अधिक तापमान व रोगों से लड़ने की क्षमता कई गुना बढ़ जायेगी। यही नहीं, अरहर की अधिक उपज देने वाली अनेक किस्में विकसित की जा सकेगी। भारत में दलहनी फसलों का औसत उत्पादन 650 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। जो अन्य फसलों की तुलना में बहुत कम है। अधिक उत्पादन देने वाली तथा रोग और कीट प्रतिरोधी किस्मों का अभाव दलहनी फसलों के कम उत्पादकता के प्रमुख कारण हैं।

वैज्ञानिकों ने अरहर जीनोम के 47,004 प्रोटीन कोडिंग जीन की पहचान की है। जिसमें 1,213 जीन रोग प्रतिरोधक और 152 जीन सूखा, गर्मी तथा लवणता के लिये सहिष्णु है। जीनोम अनुक्रम के इस्तेमाल से अरहर के *डी.एन.ए. मार्कर* की बड़ी संख्या विकसित की गई है। जोकि प्रयोगात्मक तौर पर अरहर की

किस्मों के बीच उच्च दर की विभिन्नता उत्पन्न करने के लिये मान्य है। यह *मार्कर* अरहर के जननद्रव्य की *डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग,* विविधता विश्लेषण तथा आणविक अभिजनन के लिये उपयोगी है। यह बात सत्य के बिल्कुल नजदीक है। क्रान्ति कभी दिखती नहीं है बल्कि शनै-शनैः अन्दर ही अन्दर बड़ा आकार ले रही होती है। लब्बोलुभावन यह कि मानव के लिये अन्न की कमी न हो। इसके लिये निरन्तर वैज्ञानिक अनुसंधानों का लाभ किसानों तक पहुँचे। इसका उपयोग हो तभी समाज के लिये हितकर होगा। इस दलहनी क्रान्ति का आगाज अरहर से हो रहा है।

कुछ नहीं करोगे, तो कुछ नही बनोगे। ***पं.जवाहर लाल नेहरू***

धान के पश्चात् खाली पड़े क्षेत्रों में दलहनी फसलों की संभावनाएं

नरेन्द्र कुमार एवं आरती यादव

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ मौसम की विविधता के साथ-साथ फसलों में भी अनेक प्रकार की विविधता पायी जाती है। विश्व में जहाँ भारत अपने कृषि के लिए जाना जाता है वहीं अपनी असंतुलित कृषि प्रणाली के कारण भी। हमारे देश में मुख्य फसल के रूप में खाद्यान फसलें जैसे कि धान, गेंहूँ व मक्का इत्यादि उगाई जाती हैं। रबी की ऋतु में मुख्य फसल के रूप में गेंहूँ की पैदावार की जाती है एवं खरीफ ऋतु की मुख्य फसल के रूप में धान की फसल का उत्पादन किया जाता है। भारत में लगभग 444 लाचा हे. क्षेत्र में धान की खेती की जाती है।

धान की फसल द्वारा खाली हुए क्षेत्रों में रबी फसल हेतु अवरोध

प्रत्येक वर्ष विभिन्न जैविक, अजैविक, सामाजिक एंव आर्थिक कारणों के फलस्वरूप लगभग 117 लाख क्षेत्र रबी ऋतु में खाली रह जाता है। इस धान की फसल के पश्चात क्षेत्रों के खाली पड़े होने के लिए विभिन्न कारक निम्नलिखित हैं:

(1) **अजैविक अवरोध :** धान द्वारा खाली हुए क्षेत्रों में दलहनी फसलों के उत्पादन में मृदा की कठोरता एवं नमी मुख्य अजैविक अवरोध हैं। सामान्यतः रबी की ऋतु में वर्षा का कम एवं अनिश्चित होने के कारण फसल पूर्णतः धान के उपरान्त उपलब्ध मृदा की नमी पर निर्भर करती है। धान की कटाई के पश्चात मृदा की नमी में तेजी से कमी आ जाने के कारण दलहनी फसलों की पुष्पावस्था तक लगभग सूखे की स्थिति आ जाती है जो कि दलहनी फसलों के उत्पादन व उत्पादकता को प्रभावित करती है। कभी - कभी दलहनी फसलों की पुष्पावस्था के समय आयी नमीं की कमी के कारण 50 प्रतिशत तक उपज में कमी आ जाती है।

धान की कटाई के पश्चात रबी की ऋतु में मृदा की नमी में कमी के कारण फसल के उत्पादन में कमी आ जाती है वहीं साथ-साथ मृदा में दरारों के निर्माण, मृदा की उपरी सतह भी कठोरता के लिए भी उत्तरदायी होती है। जिससे पौधों की जड़ों के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(2) **जैविक अवरोध :** दलहनी फसलों के उत्पादन में खेतों मे विभिन्न प्रकार के कीटों एंव रोगों का प्रकोप होता है, जो फसल उत्पादन में अवरोध उत्पन्न करते हैं। धान के पश्चात खाली पड़े क्षेत्रों में मृदाजनित

जड़ गलन रोगों की अधिकता होती है। वायरस जनित रोग प्रतिरोधक प्रजाति भी धान के पश्चात खाली क्षेत्रों में दलहनी फसलों के उत्पादन में बाधा है। सफेद मक्खी प्रकोप भी वायरस जनित रोगों को फैलाने में मदद् प्रदान करता है। इसके अलावा, माहू, चना फली भेदक आदि कीटों का प्रकोप होता है। समन्वित कीट एंव रोग प्रबन्धन विधि के प्रयोग से उन सभी को नियंत्रित कर दलहनी फसलों को धान द्वारा खाली क्षेत्रों लिया जा सकता है।

(3) **सामाजिक - आर्थिक अवरोध :** भारतीय कृषि प्रणाली में किसान सामान्यतः पारम्परिक ढंग से खेती करते हैं। किसानों के बीच नयी तकनीकियों एंव वैज्ञानिक जानकारियों (अधिक उपज वाली किस्मों, रोग प्रतिरोधी किस्मों, उर्वरकों एंव कीटनाशकों की जानकारियों) का अभाव है जिसके फलस्वरूप, धान की कटाई के पश्चात क्षेत्र खाली पड़े रहते हैं। इसके अतिरिक्त, फसल उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं का समय पर न मिलना एंव उन्नत फसल प्रबंधन के ज्ञान के अभाव में भी धान के पश्चात खेत खाली रह जाते हैं।

धान द्वारा खाली हुये क्षेत्रों में दलहनी फसलों की संभावनाएं

दलहनी फसलों के महत्व को किसान आदि काल से ही पहचानता रहा है और यही कारण रहा है कि वह इन फसलों को अपनी कृषि प्रणाली में समुचित रूप से सम्मिलित करता रहा है। खाद्यान फसलों के पश्चात दलहनी फसलों का उत्पादन सबसे अधिक किया जाता है। भारत के लगभग 220-230 लाख हे. क्षेत्र में दलहनी फसलों का उत्पादन होता है जिसका 80 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा आधारित है। फसल विविधीकरण में दलहनी फसलों का उत्पादन उनके विशिष्ट गुणों के कारण भी जाना जाता है।

लगातार धान की खेती से मृदा के कार्बनिक पदार्थों में कमी आ जाती है। अतः धान के पश्चात खाली पड़े क्षेत्रों में दलहनी फसलों का उत्पादन अत्यन्त उपयोगी है। दलहनी फसलें कार्बनिक पदार्थों को मृदा में बढ़ाती हैं जिससे मृदा की संरचना पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। दलहनी फसलें अपनी गहरी जड़ों के कारण उचित मात्रा में मृदा नमीं एंव आवश्यक उर्वरक तत्वों को मृदा की निचली परत से अवषोशित करती हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ दलहनी फसलें जैसे चना, मसूर इत्यादि धान के पश्चात बचे हुये मृदा नमीं में भी आसानी से उग सकते हैं एंव अच्छी पैदावार देते हैं। धान द्वारा खाली हुये क्षेत्रों में अथवा किसी भी धान्य आधारित फसल प्रणाली के पश्चात दलहनी फसलों की खेती नत्रजन की आवश्यकता की पूर्ति में सहायक होती है। दलहनी फसलें लेग्यूमिनस प्रजाति की होती हैं एंव अपनी जड़ों में बननें वाले *राइजोबियम नॉड्यूल* द्वारा वायुमण्डल में उपस्थित नत्रजन का स्थिरीकरण करती हैं। जिसके फलस्वरूप, पौधे की नत्रजन की आवश्यकता पूरी होती है। अवशेष नत्रजन अन्य फसलों द्वारा उपयोग लाई जाता है।

सम्पूर्ण कृषि परिदृश्य को देखते हुये यह निष्कर्ष निकालना पूर्णतः सत्य होगा कि दलहनी फसलों की खेती न केवल धान के पश्चात खाली क्षेत्रों के लिये आवश्यक है अपितु सम्पूर्ण कृषि प्रणाली के लिये भी उपयोगी है।

दलहनी फसलों में खरपतवार का प्रकोप एवं नियंत्रण

नरेन्द्र कुमार एवं सौम्या सिंह

खरपतवार नियंत्रण का फसल उत्पादन वृद्वि में महत्वपूर्ण स्थान है। खरपतवार फसलों के साथ रहकर उनके पोषक तत्वों, नमी, सूर्य की रोशनी व स्थान आदि का उपयोग करते हैं जिससे फसल की उपज में 40 से 100 प्रतिशत तक हानि हो जाती है। अतः खरपतवार नियंत्रण उत्पादन में होने वाली हानि को कम कर सकते हैं। खरीफ ऋतु की फसल को खरपतवारों से सबसे ज्यादा हानि होती है जिसका प्रमुख कारण वर्षा, अधिक आर्द्रता एंव उच्च तापमान का होना है, जो अनेक प्रकार के खरपतवार की वृद्धि के लिये अनुकूल होते हैं। खरपतवारों से विभिन्न फसलों में हानि में भिन्नता होने का प्रमुख कारण फसलों की पोषक तत्वों एंव नमी की विभिन्न आवश्यकता का होना है।

विश्व के दलहनी फसलों के कुल उत्पादन का 25 प्रतिशत भारत में किया जाता है। वर्तमान समय में दलहनी फसलों की उत्पादकता में काफी कमी आयी है जो केवल 640 कि.ग्रा./हे. है। दलहनी फसलों में वृद्वि एवं खरपतवार नियत्रंण विधियों में कमी की वृद्वि और विकास का खरपतवार विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। खेतों में खरपतवार मुख्य फसल के साथ पोषक तत्वों, मृदा नमी, प्रकाश एवं वृद्धि के लिये प्रतिस्पर्धा रखते हैं। दलहनी फसलें मुख्यतः वर्षा एवं शरद ऋतुओं में बोई जाती हैं। वर्षा ऋतु मे उगााई जाने वाली दलहनी फसलों की अपेक्षा शरद ऋतु की दलहनी फसलों में खरपतवारों का प्रकोप कम पाया जाता है।

खरपतवारों की रोकथाम एंव नियंत्रण

खरपतवारों की रोकथाम की अनेक विधियाँ हैं जिनमें प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है-

(अ) **ग्रीष्मकालीन जुताई :** ग्रीष्म कालीन जुताई खरपतवार रोकथाम की एक सुगम तथा कारगर क्रिया है। इसमें शरद ऋतु की फसलों की कटाई के उपरान्त ग्रीष्म में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर देते हैं जिससे बहुवर्षीय खरपतवार जैसे मोथा आदि का नियंत्रण किया जा सकता है। जुताई से भूमि के अंदर विद्यमान खरपतवार बीज, कन्द आदि ऊपर सतह पर आकर तेज धूप में सूखकर नष्ट हो जाते हैं।

(ब) **भूपरिष्करण :** असिंचित क्षेत्रों में समय से भूमि को तैयार करने एंव बुआई करने से नमी में खेत तैयार करने से मोंथा एंव दूब घास में काफी मात्रा मे कमी की जा सकती है एवं अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। इस विधि द्वारा मृदाजनित बीमारियों में भी कमी देखी गयी है।

(स) **बुवाई की विधि :** एक निश्चित पंक्ति क्रमानुसार फसलों की बुआई करने की अपेक्षा द्विपंक्तीय/जुड़वाँ पंक्ति में बुआई करने से खरपतवार में कमी आ जाती है। पक्तियों में बुआई करने पर खरपतवार नियत्रंण में आसानी होती है। पंक्तियों के बीच में हम मशीन चालित यंत्रों का उपयोग कर सकते हैं।

(द) **अंतः फसल पद्धति एंव विभिन्न फसल क्रमों द्वारा खरपतवार नियंत्रणः** अंतः फसल पद्धति में सहयोगी फसल द्वारा भूमि को ढकना खरपतवार नियंत्रण की एक प्रभावशाली विधि है। इसमें नजदीक बोई जाने वाली दलहनी फसलों के उगाने से खरपतवारों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि यदि मूँग व उर्द की फसल को अरहर के साथ अंतः फसल पद्धति में लगाएं तो 40-60 प्रतिशत तक खरपतवार को नियत्रंण कर सकते हैं। इसी प्रकार जिन खेतों में मोथा का प्रकोप ज्यादा है वहाँ धान की फसल का प्रणाली में समाहित करने से मोथा के प्रकोप को कम कर सकते हैं।

(द) **पलवार द्वारा खरपतवार नियंत्रण :** दो कूड़ों अथवा पंक्तियों के बीच में खाली पड़ी भूमि को विभिन्न प्रकार के पदार्थों जैसे फसलों/पेड़ों के अवशेष (पत्तियों), पॉलीथीन, मिट्टी द्वारा ढकने की क्रिया को पलवार कहते हैं। वाष्पीकरण द्वारा होने वाली मृदा की नमी को नष्ट होने से बचाता है। दो पंक्तियों के बीच में खाली पड़ी हुई भूमि को विभिन्न प्रकार के पदार्थों द्वारा ढकने से खरपतवारों का जमाव एंव वृद्धि को रोका जा सकता है। यह विधि मंहगी होने की वजह से ज्यादा प्रचलित नहीं हो सकी है।

(ध) **रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण :** यद्यपि उपरोक्त माध्यम खरपतवार नियंत्रण के प्रभावी साधन हैं। फिर भी इनसे खरपतवार नियंत्रण पूरी तरह नहीं हो पाता। अतः खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग पूर्ण एवं प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिये आवश्यक है। कुछ रसायन केवल घास वर्ग के खरपतवार को नियंत्रित करते हैं तथा कुछ चौड़ी पत्ती वर्ग को नियंत्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त, रसायनों को उपयोग के आधार पर भी वर्गीकृत करते हैं जैसे खेत तैयार करने से पूर्व, अंकुरण से पूर्व व बोने के उपरान्त प्रयोग होने वाले। जहाँ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुआ, लहसुआ आदि का व्यापक प्रकोप है, वहाँ पर पैन्डीमिथेलिन 1.0-1.25 कि.ग्रा./हे. फसल के बोने व अंकुरण के मध्य छिड़काव किया जाना आवश्यक होता है। खेत तैयार करने से पूर्व उपयोग में लाए जाने वाले रसायनों में फ्लुक्लोरेलिन (0.75-1.0 कि.ग्रा./हे.) प्रमुख है। जिन खेतों में गेंहूँ का मामा या जंगली जई का प्रकोप अधिक है वहाँ आइसोप्रोटोरोंन की 0.75-1.0 कि.ग्रा./हे. मात्रा बोने के तुरन्त बाद डालनी चाहिए।

समन्वित खरपतवार नियंत्रण

खरपतवारों की दशा, समय तथा उनकी संख्या को देखते हुए कभी-कभी एक विधि द्वारा खरपतवार नियत्रंण सम्भव नहीं हो पाता है। ऐसी दशा में खरपतवार नियत्रंण करने के लिये दो अथवा अधिक पद्धतियों

को एक साथ अपनाने से बहुत ही प्रभावशाली खरपतवार नियत्रंण हो जाता है। चना में समन्वित खरपतवार नियत्रंण में कर्षण क्रियाओं तथा रासायनिक विधि द्वारा खरपतवारों के प्रकोप को कम कर सकते हैं तथा बथुआ के प्रकोप को भी कम कर सकते हैं। चना की नवम्बर के द्वितीय सप्ताह में बुआई करने पर खरपतवारों के शुष्क भार मे कमी हो जाती है जिससे चना की उपज भी अधिक होती है। दलहनी फसलों में समुचित खरपतवार नियंत्रण के लिये पेंडिमेथिलीन के प्रयोग के बाद एक बार निराई करना अधिक प्रचलित हुआ है।

अतः हम कह सकते हैं कि उचित खरपतवार नियत्रंण विधि को अपनाकर किसान भाई दलहनी फसलों की अच्छी पैदावार ले सकते हैं।

आलस्य दरिद्रता का मूल है। ***यजुर्वेद***

दलहनी फसलों में जैव उर्वरक का महत्व

वेदराम, एम.एस. वैन्कटेश, उम्मेद सिंह एवं के.के. हाजरा

नत्रजन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत वायुमण्डल है। समुद्र तल के ऊपर की प्रत्येक हेक्टेअर भूमि के ऊपर लगभग 78 हजार टन नत्रजन निष्क्रिय गैस के रूप में मौजूद है। इस नत्रजन के संश्लेषण के लिए मानव द्वारा कृत्रिम विधियाँ तो विकसित की ही गयी हैं किन्तु प्रकृति ने भी ऐसे सूक्ष्म जीवों की रचना की है जो कि वायुमण्डल की नत्रजन का यौगिकीकरण करते हैं। मुख्य रूप से दो प्रकार के सूक्ष्म जीव नत्रजन यौगिकीकरण की क्रिया में भाग लेते हैं। पहले प्रकार के सूक्ष्मजीव दलहनी फसलों के साथ साहचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उनकी जड़ों में पाई जाने वाली जड़ ग्रन्थियों में वायुमण्डल की नत्रजन का यौगिकीकरण करते हैं, इन्हें सहजीवी सूक्ष्मजीव के नाम से जाना जाता है। इस श्रेणी में *राइजोबियम* नाम का जीवाणु आता है। दूसरे प्रकार के सूक्ष्म जीव मिट्टी में स्वतंत्र रूप से जीवन यापन करते हैं और नत्रजन का यौगिकीकरण करते हैं इन्हें असहजीवी सूक्ष्मजीव कहते हैं इसमें एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, नील हरित शैवाल व एजोला आदि प्रमुख है।

राइजोबियम कल्चर चारकोल एवं जीवाणुओं का मिश्रण है जिसके प्रत्येक एक ग्राम में 10 करोड़ से अधिक *राइजोबियम* जीवाणु होते है। जिसका उपयोग सभी प्रकार की दाल वाली फसलों एवं चारे वाली दलहनी फसलों जैसे चना, मसूर, मटर, अरहर, उर्द, मूँग, सोयाबीन, मूँगफली और बरसीम, सिरका आदि में किया जाता है। यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि प्रत्येक फसल के लिए अलग किस्म का *राइजोबियम कल्चर* उपयोग किया जाता है। इससे न केवल उपचारित फसल की उपज बढ़ती है बल्कि फसल की कटाई पश्चात उपस्थित गाँठों की सम्पूर्ण नत्रजन आगामी फसल के काम आती है। फसल चक्र में दलहनी फसलों का समुचित स्थान देने से मिट्टी की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है। *राइजोबियम* जीवाणु द्वारा विभिन्न दलहनी फसलों के अनुसार लगभग 50 से 250 कि.ग्रा. तक नत्रजन/हेक्टेअर/फसल अवधि में यौगिकीकरण करने का अनुमान है, जिससे 20 से 35 प्रतिशत तक पैदावार बढ़ जाती है और अगली फसलों के लिए 25 से 125 कि.ग्रा. नत्रजन तक भूमि में बढ़ा देती हैं।

राइजोबियम साधारणतया हर प्रकार की भूमियों पाये जाते हैं परंतु यह आवश्यक नहीं है कि भूमि में उपस्थित जीवाणु नत्रजन यौगिकीकरण के लिए सक्षम हों, अतः कल्चर के माध्यम से मिट्टी में विशेष प्रभावकारी *राइजोबियम* जीवाणु डाले जाते हैं जिनकी नत्रजन स्थिरीकरण क्षमता मिट्टी में पहले से मौजूद *राइजोबियम* की तुलना में बहुत अधिक होती है। बुवाई से पहले दलहनी फसलों को *राइजोबियम कल्चर* से उपचारित किया जाता है और जैसे ही *कल्चर* में उपस्थित जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों के सम्पर्क में आते हैं, इन फसलों

की जड़ों से एक विशेष प्रकार का स्राव निकलता है जो *राइजोबियम* को आकर्षित करता है। *राइजोबियम* द्वारा ऑक्सिन स्राव निकलता है, इससे मूल रोम कुंचित हो जाते है और इसी माध्यम से *राइजोबियम* जड़ के अन्दर प्रवेश कर जाता है। प्रजनन द्वारा इनकी संख्या में वृद्धि होती है, फिर कई अवस्थाओं से होता हुआ यह जीवाणु अपना जीवन-चक्र पूर्ण करता है और वायुमण्डल की नत्रजन का स्थिरीकरण करके पौधों को नत्रजन उपलब्ध कराता है। फसल कटने के बाद जड़ें और गाठें भूमि में रह जाती हैं जिसके फलस्वरूप यह जीवाणु मिट्टी के अभिन्न अंग बन जाते हैं और इनमें पाई जाने वाली नत्रजन भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने में सहायक होती है।

उपयोग विधि : आधे लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ व थोड़ा सा गोंद मिला लिया जाता है। इस घोल को 15 से 20 मिनट तक हल्का गर्म करते हैं ताकि गुड़ व गोंद आपस में अच्छी तरह मिल जायें। इसके पश्चात, इस मिश्रण को सामान्य तापक्रम तक ठंडा करने के बाद 250 ग्राम *राइजोबियम कल्चर* के पैकेट को अच्छी तरह घोलते हैं। इस मिश्रण के घोल को 10 कि.ग्रा. बीजों पर छिड़काव कर इस प्रकार मिलायें कि घोल की परत प्रत्येक बीज के दाने पर चढ़ जायें। तत्पश्चात, इस बीज को छाया में दो घन्टे सुखा लें और तुरन्त बुवाई करके कूड़ों को बन्द कर दें।

सफल निवेशन के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान रखना चाहिए :

सफल ग्रंथिकरण एवं नत्रजन यौगिकीकरण हेतु यह आवश्यक है कि मिट्टी में *राइजोबियम* जीवाणु पर्याप्त संख्या में हों अतः दलहनी फसलों को पहली बार फसल चक्र में शामिल किया जाना हो तो यह विशेष ध्यान देना चाहिए कि *राइजोबियम* की प्रजाति विशेष से उपचारित कर लें। कल्चर से बीजों को उपचारित करने से मिट्टी में *राइजोबियम* जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

कल्चर को विश्वसनीय जगह से ही खरीदना चाहिए तथा खरीदते समय उपयोग की अन्तिम तिथि देख लेनी चाहिए यदि अन्तिम तिथि निकल गयी है तो *कल्चर* नहीं खरीदना चाहिए। साथ ही यह भी सुनिश्चित कर लें कि *कल्चर* उसी फसल का है जो हम बोना चाहते है।

बीजजनित रोगों के नियंत्रण के लिए दलहनी फसलों के बीजों को कार्बेन्डाजिम अथवा थाईरम जैसे रसायनों से उपचारित कर बोया जाना चाहिए। फफूँदीनाशकों से उपचारित बीजों को जीवाणु उर्वरक से उपचारित करने पर *राइजोबियम* को कोई क्षति नहीं पहुँचती है। किसानों को ऐसी प्रजातियां अपनाना चाहिए जो भूमि एवं जलवायु के अनुकूल होने के साथ-साथ कीट एवं रोगों के प्रतिरोधक हों।

यदि किसान दलहनी फसलों के बीज को कीटनाशक, फफूँदनाशक एवं *राइजोबियम* तीनों से उपचारित करना चाहते हैं तो ध्यान रहे कि बीजोपचार का क्रम फफूंदीनाशक - कीटनाशक - *राइजोबियम* होना चाहिए। उपरोक्त क्रम से उपचारित बीज एवं *राइजोबियम* को कोई खतरा नहीं होता। ध्यान रहे कि बीजोपचार उचित क्रम में किया है।

अम्लीय भूमि में मॉलिब्डेनम की कमी होने पर *राइजोबियम* जीवाणु निष्क्रिय हो जाते हैं इसलिए आवश्यकतानुसार चूना डालकर पी.एच. मान 6.5-7.5 के मध्य लाना चाहिए।

भूमि में अधिक नाइट्रोजन की मात्रा होने पर जैविक नत्रजन यौगिकीकरण कम हो जाता है। इसके विपरीत, फॉस्फोरस व गन्धक की उचित पूर्ति से *राइजोबियम* की क्षमता में वृद्धि होती है।

कल्चर का इस्तेमाल यथाशीघ्र कर लेना चाहिए। बुवाई में विलम्ब के कारण यदि इसे कुछ समय तक रखना आवश्यक हो तो ठंडे स्थान (30^0 सेन्टीग्रेड से कम तापक्रम पर) अथवा घड़े में रखकर घड़े को बाहर से नम रखकर भी सुरक्षित रख सकते हैं। अधिक तापक्रम पर कल्चर की शक्ति का ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है।

एक पैकेट *कल्चर* से बीज की मात्रा 10 किलोग्राम का उपचार करना चाहिए। *कल्चर* को हमेशा हल्के हाथों से मिलाया जाये ताकि बीज के छिल्के रगड़ से अलग न हो जायें।

यथा सम्भव बुवाई तीसरे पहर की जाय। यदि बुवाई दोपहर या पहले की जाय तो कूड़ों को बुवाई के बाद तुरंत बन्द कर देना चाहिए।

बुवाई से पहले सुनिश्चित कर ले कि मृदा में नमी की मात्रा उचित है। नमी की कमी या शुष्क मृदा में बुवाई करने पर *राइजोबियम* की सक्रियता कम हो जाती है।

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का अति महत्वपूर्ण स्थान है। ये फसलें वायुमण्डल में पाई जाने वाली नत्रजन का स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरता बढ़ाती है तथा कृषि उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करती है। उपलब्ध आकड़ों के दृष्टिगत विश्व के कुल जैविक नत्रजन स्थिरीकरण का 40 प्रतिशत से अधिक दलहनी फसलों द्वारा ही होता है। दलहनी फसलों की जड़ों की ग्रन्थियों में पाये जाने वाला *राइजोबियम* जीवाणु व अन्य सूक्ष्मजीव न केवल वायुमण्डल में उपस्थित नत्रजन का स्थिरीकरण करते हैं बल्कि मृदा में पायी जाने वाली अनुपलब्ध फॉस्फोरस को भी पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इसलिए दलहनी फसल आधारित फसल चक्र को मृदा उर्वरता पोषक फसल चक्र कहते हैं।

इस प्रकार, दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करने या दलहन आधारित फसल तंत्र अपनाने एवं जीवाणु उर्वरक से बीजोपचार करने से फसल उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य, आर्थिक लाभ, जलवायु परिवर्तन प्रबन्ध एवं टिकाऊ खेती में सहायक सिद्ध हुए हैं। अतः दलहन आधारित फसल चक्र अपनाओ, खेती को टिकाऊ बनाओ।

परिश्रम कीजिए, इसका कोई विकल्प नहीं है। ***स्वामी विवेकानन्द***

जीनोम सीक्वेंसिंग का महत्व

सुभोजित दत्ता

पिछले दस वर्षों में पादप जीव विज्ञान के शोध दृष्टिकोण एवं विशेष रूप से पादप प्रजनन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं जोकि मुख्य से *जीनोमिक्स* एवं सहायक तकनीकों में हुई प्रगति के द्वारा सम्भव हुआ है। *जीनोम* किसी प्राणी के सभी जीनों का समूह है एवं उस प्राणी की सम्पूर्ण आनुवांशिक सूचना को प्रदर्शित करता है। यह सूचना *डी.एन.ए.* अथवा अधिकांश विषाणुओं में *आर.एन.ए.* के रूप में निहित है। जीनोम अनुक्रमण द्वारा बेस युग्मकों जैसे एडलीन, थायमीन, साइटोसीन एवं ग्वानीन की श्रृंखला को ज्ञात किया जाता है। सन् 1953 में आनुवंशिक पदार्थ की संरचना की खोज के उपरान्त विज्ञान के एक नये युग का प्रारम्भ हुआ है। जीव विज्ञान एवं आण्विक आनुवंशिकी तकनीकें जोकि *जीनोमिक्स* युग के काफी पहले प्रारम्भ हुई, उनमें भी काफी उन्नति हुई।

जीनोम एवं *जीनोमिक्स* शब्द सन् 1986 में मानव *जीनोम* परियोजना के प्रारम्भ के समय प्रचलित हुए। मानव *जीनोम* परियोजना का प्रथम प्रारूप प्राप्त होने में लगभग 17 वर्ष लग गये परंतु इस परियोजना में *जीनोमिक्स* के लिए नये संसार के द्वार खोल दिये। इसके द्वारा शीघ्र ही विभिन्न उन्नत तकनीकों ने पादप शोध समुदाय को लाभान्वित किया। आण्विक जीव विज्ञान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में नए अनुसंधान उपकरण उपलब्ध हुए, जिनके द्वारा *डी.एन.ए.* अनुक्रमण में *रोबोटिक्स* एवं सूचना के प्रयोग द्वारा अनुक्रमण बोधगम्य एवं स्वीकार हुई।

अरैबिडाप्सिस थैलियाना प्रथम पादप *जीनोम* था, जिसका अनुक्रमण ज्ञात किया गया। तत्पश्चात चावल का अनुक्रमण ज्ञात हुआ। अधिकांश फसल वैज्ञानिक पादप जीनोम अनुक्रमण का नियमित प्रयोग कर रहे हैं एवं *जीनोम* अनुक्रमण आण्विक जीव-विज्ञान एवं आण्विक प्रजनन द्वारा पादप सुधार के विभिन्न प्रयासों का प्रारम्भ बिन्दु बन गया है।

प्रारम्भ में हमारा प्रयास मुख्यतः एकाकी जीन/कुछ जीनों पर केन्द्रित था जोकि फसल के किसी मुख्य गुण जैसे रोग प्रतिरोधकता के लिए महत्वपूर्ण थे। तथापि जीनोमिक्स किसी जीवन की प्रणाली को समझने के लिए हमारी समझ बढ़ाता है इसलिए कई जीनों के परस्पर प्रभाव एवं नियामक तत्वों के प्रारूपी व्यवहार के संदर्भ में उपयुक्त *हैप्लोटाइप* की पहचान में सहायक होता है। अरहर एवं चना *जीनोम* पहले ही प्रजनकों के प्रयोग हेतु उपलब्ध है एवं मूँग *जीनोम* भी सम्पूर्णता के निकट है।

चूँकि इन जीनोम अनुक्रमणों का विस्तार से विश्लेषण हो रहा है, ये अनुक्रमण नये आण्विक चिन्हकों के सन्दर्भ में उपयोगी उपकरण उपलब्ध करायेंगें एवं इस प्रकार नये प्रजाति के विकास के समय को कम करने एवं वांछनीय जीन स्थानान्तरण में सहयोग करेंगे। जीनोम अनुक्रमण की उपलब्धता किसी जाति का विज्ञान एवं उसके घरेलू स्वरूप को समझने के योग्य बनाता है जिसके द्वारा उस जाति के प्राकृतिक संबंधियों के वांछनीय जीनों को स्थानान्तरित करने की अनुमति देता हैं अब हमारे पास चना एवं अरहर के जीन की उनकी संख्या स्थिति एवं नियामक तत्वों के सन्दर्भ में सम्पूर्ण समझ है। चना में 28,000 जीन हैं जिसमें से केवल 187 जीन ही ऐसे हैं जोकि रोग प्रतिरोधकता में भागीदार है एवं इनकी जीनोम में स्पष्ट स्थिति द्वारा इन्हें *क्लोन* करने के लिए अथवा कुलीन प्रजातियों में स्थानान्तरित करने के लिए सम्भव प्रयास करना चाहिए।

सरकार तथा अन्य अनुदान संस्थाओं से प्राप्त अनुदानों का सहयोग इस सफलता में सहायक हुआ है और आगे आने वाले 8-10 वर्षों में भी इसे बनाए रखने की आवश्यकता है जब तक कि इनके परिणामों की पुष्टि हो जायेगी। बाजार पसन्दीदा नये गुणों से युक्त फसलों का विकास अब वास्तविकता के निकट है उदाहरणतः बड़े एवं चमकीले बीज। उद्योग भागीदारों को उनकी वरीयता के अनुसार अनुसंधान में निवेश और अनुसंधान समुदाय से उनकी प्राथमिकता के सन्दर्भ में पूछने के लिए आगे आना चाहिए। निजी क्षेत्र कम लागत एवं उच्च परिणाम वाली *जीनोटाइपिंग* सेवायें बनाकर *जीनोमिक्स* सहायक प्रजनन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। *जीनोमिक्स* युक्त फसल सुधार तकनीक विशेष रूप से पूरी पादप जनसंख्या की यथार्थ प्रारूपकीय गणना पर निर्भर करती है। हमारे देश में अभी तक सरकारी संस्थान एवं गैर सरकारी प्रयोगशालाओं प्रारूपकीय का उपयुक्त आधारभूत ढाँचा उपलब्ध नहीं है एवं इस मुद्दे को प्राथमिकता के आधार पर प्रस्तुत करना चाहिए। सरकारी संस्थानों के अतिरिक्त, गंभीर निजी क्षेत्रों को भी उपयुक्त *जीनोमिक्स* सुविधा प्रदान करने की कोशिश करनी चाहिए।

फसल सुधार कार्यक्रम में काम आने वाली आनुवांशिक अभियांत्रिकी पिछले कुछ समय से हमारे देश में चर्चा का विषय बनी है। अतः ऐसे वक्त में *जीनोमिक्स* सहायक प्रजनन तकनीक फसल सुधार समुदायों में एक स्वीकार उपाय के रूप में सामने आयी है क्योंकि यह एंटिबायोटिक चिन्हक व जीवाणु-जीनों का उपयोग नहीं करती।

मानव की पूर्णता अपनी अपूर्णता को जान लेने में हैं। ***आइन्सटीन***

दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन

शिवपाल सिंह चौहान और इन्द्र प्रकाश सिंह

खरपतवार कृषि की आज की ही समस्या नहीं अपितु मनुष्य ने जब से कृषि कार्य प्रारम्भ किया है तभी से यह उसके संग है। प्रारम्भ में मनुष्य ने अपने चारों ओर उगे कुछ उपयोगी पौधों को चुना और उन्हें अपनी खाद्य समस्या हल करने के लिये उगाना शुरू किया, अनुभव के परिणामस्वरूप उसने देखा कि बोई गयी फसल के अलावा कुछ बिना बोये गये अनचाहे पौधे उग आते हैं जो फसल की वृद्धि एवं अधिकतम पैदावार लेने में बाधक होते हैं। इन्हीं अवांछित पौधों को जो बिना बोये ही फसलों के साथ उग आते हैं, 'खरपतवार' कहा जाता है।

हमारे देश की तेज गति से बढ़ती हुई जनसंख्या और उसकी खाद्यान्न पूर्ति की समस्या का समाधान तभी सम्भव है जबकि प्रति इकाई क्षेत्र, समय एवं साधन से अधिक से अधिक उत्पादन लिया जाये तथा उर्वरक, पानी आदि संसाधनों को अपनाने के साथ-साथ फसल को खरपतवार, कीट, रोग आदि व्याधियों से भी बचाया जा सकता है। खरपतवारों से मिट्टी की नयी और पोषक तत्व दोनों का ह्रास होता है, जिससे इनकी उपलब्धता फसल के लिये घट जाती है। फलस्वरूप पौधों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और उपज घट जाती है। कृषि उत्पादन में होने वाले नुकसान का 33 प्रतिशत केवल खरपतवारों द्वारा होता है, ऐसा शोधों द्वारा स्पष्ट हो चुका है। इस प्रकार 1980 करोड़ रुपये मूल्य की कृषि सम्पदा की हानि प्रत्येक वर्ष हो जाती है।

खरपतवारों से हानियाँ

किसान भाई जो अपनी पूर्ण शक्ति व साधन फसल की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये लगाता है, ये अनैच्छिक पौधे इस उद्देश्य को पूरा नहीं होने देते हैं। खरपतवार दलहनी फसल से पोषक तत्व, नमी,

सारणी - 1 भारत में विभिन्न व्याधियों द्वारा कृषि में वार्षिक हानि का विवरण

क्र. सं.	व्याधियाँ	प्रतिवर्ष हानि	
		करोड़ रु. में	प्रतिशत में
1.	खरपतपवार	1980	33
2.	रोग एवं बीमारी	1560	26
3.	कीट	1200	20
4.	चूहे	360	6
5.	भण्डारण व्याधि	420	7
6.	अल्प व्याधि	480	8
	कुल	6000	100

प्रकाश, स्थान आदि के लिये प्रतिस्पर्धा करके फसल की वृद्धि, उपज एवं गुणों में कमी कर देते हैं। खरपतवारों से हुई हानि किसी अल्प कारणों जैसे - कीड़े-मकोड़े, रोग व्याधि आदि से हुई हानि की अपेक्षा अधिक होती है। एक अनुमान के आधार पर हमारे देश में विभिन्न व्याधियों से प्रतिवर्ष लगभग 6000 करोड़ रुपये की हानि होती है जिसका एक तिहाई भाग खरपतवारों द्वारा होता है।

आमतौर पर विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा 5 से 85 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई है। लेकिन कभी-कभी यह कमी शत-प्रतिशत तक हो जाती है। खरपतवार फसलों के लिये भूमि में निहित पोषक तत्व एवं नमी का एक बड़ा हिस्सा शोषित कर लेते हैं तथा साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से वंचित रखते हैं। परिणामस्वरूप, पौधे की विकास गति धीमी पड़ जाती है एवं उत्पादन स्तर गिर जाता है। खरीफ मौसम की फसलों में रबी फसलों की अपेक्षा खरपतवारों से अधिक नुकसान होता है। इसके अतिरिक्त, खरपतवार फसलों में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं तथा कीट व्याधियों को भी शरण देते हैं तथा फसल की गुणवत्ता में भी कमी कर देते हैं। बहुत से खरपतवार मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव डालते हैं।

सारणी-2: दलहनी फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय एवं खरपतवारों द्वारा पैदावार में कमी

फसल	खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय (दिनों में)	उपज में कमी (%)
अरहर	15-60	20-40
मूँग	15-30	30-50
उर्द	15-30	30-50
लोबिया	15-30	30-50
चना	30-60	20-30
मटर	30-45	20-30
मसूर	30-60	20-30

फसल के पौधे अपनी प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवारों से मुकाबला नहीं कर पाते हैं अतः फसलों को खरतपवाररहित रखना आवश्यक होता है। प्रायः यह देखा गया है कि कीड़े-मकोड़े, रोग व्याधि लगने पर इनके रोकथाम की ओर तुरन्त ध्यान दिया जाता है लेकिन किसान भाई खरपतवारों को तब तक बढ़ने देते हैं जब तक कि वह हाथ से पकड़ कर उखाड़ने लायक न हो जायें। दलहनी फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रांतिक समय का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

दलहनी फसलों के प्रमुख खरपतवार

किसी स्थान पर खरपतवारों की उपस्थिति वहां की जलवायु, भूमि संरचना, भूमि में नमी की मात्रा, खेतों में बोई गई पिछली फसल आदि पर निर्भर करती है। इसलिये एक ही फसल में अलग-अलग स्थानों पर

अलग-अलग प्रकार के खरपतवार पाये जाते हैं। खरपतवारों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया हैं एक चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे - बथुआ, हिरनखुरी, कृष्णनील, जंगली मटर, जंगली गोभी, अंकरी, आदि तथा दूसरे सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे - जंगली जई, सांवक, प्याजी, पोहली आदि। इसके अतिरिक्त, मोथा भी प्रमुख खरपतवार है।

खरपतवारों की रोकथाम कैसे करें?

खरपतवारों की रोकथाम में ध्यान देने योग्य बात यह है कि खरपतवारों का नियंत्रण सही समय पर करें, चाहे किसी भी तरीके से करें। खरपतवारों से मिट्टी की नमी और पोषक तत्वों का ह्रास होता है फलस्वरूप पौधे की विकास गति धीमी पड़ जाती है एवं उत्पादन स्तर गिर जाता है। दलहनी फसलों में खरपतवारों की रोकथाम निम्नलिखित तरीकों से की जा सकती है।

निवारक विधियाँ : इस विधि में वे क्रियायें शामिल हैं जिनके द्वारा खेतों में खरपतवारों के प्रवेश को रोका जा सकता है जैसे -

प्रमाणित बीजों का प्रयोग एवं उन्नतशील जातियों का चुनाव करें।

उपयुक्त फसल चक्र अपनायें।

समय पर बुवाई करें एवं संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।

पौधों के बीच उचित दूरी एवं फसलों की बुवाई पंक्तियों में करें।

ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई करके भूमि को खुला छोड़ दे।

यांत्रिक विधियाँ : खरपतवारों पर काबू पाने की यह एक सरल एवं प्रभावी विधि है। फसलों की प्रारम्भिक अवस्था में बुवाई के 15 से 45 दिन के मध्य का समय खरतपवारों से प्रतियोगिता की दृष्टि से क्रांतिक समय होता है अतः आरम्भिक अवस्था में ही फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना अधिक लाभदायक है। सामान्यतः दो निराई-गुड़ाई, पहली बुवाई के 20-25 दिन बाद तथा दूसरी 40-45 दिन बाद करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। उत्पादकता में कमी को रोकने हेतु फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण खुर्पी, कल्टीवेटर से किया जा सकता है। इससे खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि की सतह पर एक हल्की सी पर्त बन जाती है। जिससे कैपलरी क्रिया द्वारा नीचे का जल ऊपरी सतह पर नहीं आ पाता और वाष्पीकरण द्वारा जल की हानि नहीं हो पाती है। इससे खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के साथ-साथ, मृदा में वायु के संचार में वृद्धि होने से फसल एवं सहजीवाणुओं की वृद्धि हेतु अनुकूल वातावरण तैयार होता है।

रासायनिक विधियाँ : खरपतवारनाशी रासायनों का प्रयोग करके भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। इससे प्रति हेक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की भारी बचत होती है। लेकिन इन रसायनों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इनका प्रयोग उचित मात्रा में उचित ढंग से तथा उपयुक्त समय पर हो अन्यथा लाभ के बजाय हानि की सम्भावना रहती है। खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग बड़ी सावधानीपूर्वक करना चाहिये। रसायनों का प्रयोग करते समय हाथों में दस्ताने तथा मुँह में *मॉस्क* लगाकर वायु की दिशा में छिड़काव करना चाहिये। दलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख खरपतवारनाशी रसायनों का विवरण सारणी-3 में दर्शाया गया है।

सारणी-3: दलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख खरपतवारनाशी रसायनों का विवरण

फसल	खरपतवारनाशी रसायन	रसायन की मात्रा (लीटर) प्रति है.	छिड़काव का उचित समय	छिड़काव करने की विधि
अरहर	पेण्डीमेथिलीन (स्टाम्प 30 ई.सी.)	3–4 लीटर	बीज अंकुरण से पूर्व (72 घंटे के अन्दर)	600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेअर की दर से समान रूप से छिड़काव
उर्द व मूँग	–तदैव–	3–4 लीटर	–तदैव–	
चना, मटर, मसूर	–तदैव–	1.0–1.5 ली.	–तदैव–	

समय की रक्षा, धन की तरह करें। ***जवाहर लाल नेहरू***

पादप विषाणु कैसे फैलते हैं

अनिरूद्ध कुमार अग्निहोत्री, मो. अकरम एवं नईमउद्दीन

विभिन्न पौधों में भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु प्रायः एक प्रोटीन आवरण तथा न्यूक्लिक अम्ल (डी.एन.ए. अथवा आर.एन.ए.) से बने बहुत छोटे संक्रामक कण होते हैं। न्यूक्लिक अम्ल के भाग को जीनोम, एक पूर्ण विषाणु कण को वाइरियोन तथा इसके प्रोटीन आवरण को कैपसिड कहते हैं।

विषाणु प्रायः अन्य रोग जनकों जेसे जीवाणु, कवक आदि से भिन्न होते हैं। यह केवल जीवित कोशिकाओं के अन्दर ही प्रजनन कर सकते हैं। बिना किसी जीवित कोशिका के यह केवल अक्रिय कण होते हैं। इसीलिए इन्हें जीवित एवं अजीवित के बीच की कड़ी भी कहा जाता है।

कवकों तथा जीवाणुओं की तरह परपोषी के अन्दर जाने के लिए इनमें कोई भी संरचना नहीं होती है न ही परपोषी में प्रवेश करने हेतु यह कोई टॉक्सिन या अपना जैव रसायन उत्पन्न करते हैं। विषाणुओं का परपोषी कोशिकाओं (पादप) में प्रवेश पर्णरोमों, क्षतिग्रस्त कोशिकाओं, कुछ आर्थोपोड्स (जैसे- माहू, श्वेत मक्खी, लीफ हॉपर, थ्रिप्स, बीटल, सूत्रकृमि, माइट व कवक द्वारा होता है। इन जीवों को विषाणु वाहक कहा जाता है।

यह वाहक जीव विषाणु संक्रमित पौधे से अपना भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया में विषाणु भी ग्रहण कर लेते हैं तथा ऐसे वाहक जीव द्वारा स्वस्थ पौधे से भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया में विषाणु का संचारण हो जाता है। इस प्रकार विषाणुओं का जीवन चक्र पूरे खेत में चलता रहता है और धीरे-धीरे स्वस्थ पौधे विषाणुओं से संक्रमित होते रहते हैं। एक बार विषाणु से संक्रमित होने पर वाहक कीट कई दिनों तक उसी विषाणु का संचारण कर सकता है। विषाणु के संक्रमण से पौधे की उपापचयी प्रक्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव के कारण में कुछ बाहरी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जैसे - पीला चितेरी, बन्ध्यता, बौनापन, पर्ण कुन्चन, हरिमाहीनता आदि।

सभी पादप विषाणुओं में लगभग 55% विषाणु माहू द्वारा, 11% लीफहोपर द्वारा, 11% बीटल द्वारा, 9% श्वेत मक्खी द्वारा, 7% सूत्रकृमि द्वारा, 5% कवक द्वारा तथा शेष 2% थ्रिप्स द्वारा फैलते है।

1. **माहू :** यह एक छोटा कीट होता है। जो रंगहीन अथवा विभिन्न रंगों का होता है। यह प्रायः हरा, काला, भूरा व गुलाबी रंग का भी होता है। जिसकी ल. 1 - 10 तक होती है। इस रोगवाहक कीट की विषाणुओं के संचारण में प्रमुख भूमिका है। जो मुख्यता पेटिवायरस, कुकुमोवायरस, तथा ल्यूटियोवायरस का संचारण करता है। दलहनी फसलों में मुख्य रूप से बीन लीफ रोल वायरस, वीन यलो मोजेक वायरस, कुकुम्बर मोजेक वायरस, राजमा के सामान्य मोजेक वायरस का संचारण करता है।

2. **श्वेत मक्खी :** यह अत्यंत छोटा सफेद रंग का रोगवाहक कीट होता है। जिसकी जाति *बेमीसिया टबैकी* अनेक विषाणु जैसे अफ्रीका कसावा मोजेक वायरस, बीन गोल्डन मोजेक वायरस, बीन डुवार्फ मोजेक विषाणु, बीन कैलिको मोजेक वायरस व टोमेटो यलो लीफ कर्ल विषाणु'', का वाहक है और मुख्य रूप से दलहनी फसलों में लगने वाला पीला चितेरी विषाणु का वाहक कीट है। जो अरहर, मूँग उर्द, लोबिया व सोयाबीन में भी देखा गया है।

3. **लीफ हॉपरः** इस कीट की कई जातियाँ विषाणुवाहक पाई गई हैं। यह सामान्यतः कीट परिवार सीकाडिलेडी का सदस्य है। यह कीट अपने चवर्णक व चूषक प्रकार के मुख अंगों द्वारा पादप रस को चूसकर विषाणु को ग्रहण कर लेता है और अपनी लार ग्रन्थियों द्वारा अन्य स्वस्थ पौधों को संक्रमित करता रहता है। यह कीट प्रायः रैब्डोवाइरिडी और रियोवाइरिडी में विषाणुओं को संचारित करते हैं तथा पीलापन, लीफ रोलिंग रोग लक्षण उत्पन्न करते हैं। मेज स्ट्रीक वायरस को संचारित करने में इसकी प्रमुख भूमिका है।

4. **थ्रिप्स :** यह कीट आकार में बहुत ही छोटा, पौधे के शीर्ष भाग, पुष्प कलिकाओं व पुष्पों के अन्दर रहता है जो उड़ने में तो ज्यादा सक्षम नहीं होता है। परंतु वायु के माध्यम से एक पादप से दूसरे पादप पर संचारित होता है। विषाणु परिवार (टॉस्पोवायरस) के सदस्य विषाणु थ्रिप्स की ही विभिन्न जातियों द्वारा संचारित होते हैं। टास्पोवायरस परिवार के दो मुख्य विषाणु ग्राउण्ड नट बड नेक्रोसिस, तथा टोमैटो स्पाटेड विल्ट वायरस है। इसके अतिरिक्त, यह रोगवाहक कीट मूँग व उर्द में पर्ण कुंचन को भी संचारित करते देखा गया है।

5. **बीटल :** यह रोगवाहक कीट लगभग 45 विभिन्न पादप विषाणुओं को संचारित करता है। इसका शरीर सिर, थोरेक्स व अबडोमेन में विभाजित होता है। जिसका जीवन चक्र अण्डा, लार्वा, प्यूपा से पूर्ण होता है। बीटल परिवार में दो प्रमुख जातियां क्राईसोमिलिडी व कुकूलियोनिड़ी होती है, जो विषाणुओं को संचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। चार प्रमुख विषाणु समूह जो बीटल से संचारित होते हैं वे हैं ब्रोमोवायरस कोमोवायरस टाइमोवायरस, तथा सदर्न बीन मोजेक वायरस के सदस्य आदि।

6. **सूत्रकृमि :** सूत्रकृमि प्रायः एक धागे के आकार का जीव होता है। जो छोटा, पतला, खण्डरहित धागों की तरह द्विलिंगी होता है। यह मिट्टी में पाये जाते हैं तथा पादपों की जड़ों पर परजीवी की भाँति रहते हैं सूत्रकृमि से फैलने वाले विषाणुओं को दो समूहों में विभाजित किया गया है। टोबरावायरस, व नीपोवायरस, जिसमें से टोबरा वायरस के वाहक सूत्रकृमि की जातियाँ ट्राइकोडोरस व पैराट्राइकोडोरस हैं और नीपोवायरस की वाहक जातियाँ लोगींडोरस व जाइफीनीमा हैं। सूत्रकृमि की ये जातियाँ ग्लेडिओलस नोचज लीफ वायरस, पी अरली ब्राउनिग वायरस, टोबैको रैटेल वायरस, अरेबिक चितेरी

विषाणु, चेरी लीफ रोल वायरस, टोबैको रिंग स्पाट वायरस व टोमैटो रिंग स्पाट वायरस को संचारित करने हेतु उत्तरदायी है।

7. **कवक :** आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ पादप विषाणु (लगभग 5%) कवक द्वारा भी एक पादप जाति से दूसरी पादप जाति में स्थानान्तरित होते होते हैं। जिसमें प्रायः दो जातियां, ओलपीडियम व पोलीमिक्सा स्पोन्जोस्पोरा की प्रमुख भूमिका है। जो प्रायः टोबैको नेक्रोसिस विषाणु, कुकुम्बर नेक्रोसिस विषाणु, व्हीट मोजेक, टोबैको स्टेट विषाणु की वाहक जातियां है।

8. **इरियोफिडमाइट :** एक अति सूक्ष्म जीव, जिसका वैज्ञानिक नाम *एसेरिया केजेनी* है, जो प्रायः पत्तियों की निचली सतह पर पाये जाते हैं। जो प्रायः वायु के प्रवाह या संस्पर्श द्वारा ही स्थानान्तरित होते है और मुख्यतः राइमोवायरस व ट्राइटीमोवायरस समूह के विषाणुओं को संचारित करता है।

   दलहनी फसलों में मुख्य रूप से यह अरहर का बाँझ अथवा बन्ध्यता मोजेक रोग फैलाता है। जो कि अरहर बंध्यता चितेरी विषाणु द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त, यह विषाणु वाहक कीट व्हीट स्ट्रीक चितेरी विषाणु को संचारित करने में प्रमुख भूमिका रखता है।

9. **संक्रमित बीज :** कुछ पादप विषाणु प्रायः संक्रमित पौधों के संक्रमित बीजों से भी संचारित होते हैं। दलहनी फसलों में उर्द का पर्ण व्यांकुचन रोग संक्रमित बीजों द्वारा फैलता है। इसके अतिरिक्त ''बीन सामान्य चितेरी विषाणु'' जो राजमा व अन्य दलहनी फसलों जैसे - मूँग, उर्द, मटर व मसूर में मोजेक रोग करता है, संक्रमित बीजों से ही होता है।

इसके अतिरिक्त, कुछ विषाणु परागकण के द्वारा, ग्रैफ्टिंग द्वारा कृत्रिम इनोकुलेशन द्वारा व संस्पर्श द्वारा भी एक पादप जाति से दूसरी पादप जाति में संचारित होते हैं।

कीट प्रबंधन - पर्यावरण हितैषी समाधान

नईमउद्दीन, मो. अकरम, श्रद्धा पंडित एवं शुभांगी अग्निहोत्री

कीड़े-मकोड़े फसल की पैदावार को अत्यधिक क्षति पहुँचाते हैं जिससे किसानों का परिश्रम बर्बाद हो जाता है। इन समस्याओं के निवारण हेतु किसान रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं कि रासायनिक कीटनाशक कीट प्रबन्धन के सफल हथियार के रूप में सामने आये हैं परंतु इनके अनेकों दुष्परिणाम भी हैं। ये न सिर्फ किसान का आर्थिक बोझ बढ़ाते हैं बल्कि पर्यावरण और जीव जन्तुओं को भी दुष्प्रभावित करते हैं।

इण्डोसल्फान को एक प्रभावशाली रासायनिक कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता था। चना फली भेदक, सेमीलूपर, कटुआ (कटवर्म), काला माँहू जैसे कीटों से बचाव करने के लिये इण्डोसल्फान का प्रयोग काफी प्रचलित हुआ परंतु इसी कीटनाशक के विनाशकारी प्रभाव ने केरल के एक गाँव में तबाही का मंजर पैदा कर दिया था। वहाँ की वर्षा खुशहाली का प्रतीक होने के बजाय विष का स्रोत बन गयी। काजू की खेती करने वाले इस गाँव पर वर्ष 1976 से इण्डोसल्फान का छिड़काव वायुयान द्वारा 25 वर्ष तक लगातार किया गया। हवा, पानी, धरती, जीव-जन्तु सब इस कीटनाशक के प्रकोप के भागीदार बने। सब कुछ समाप्त होने की सीमा तक विनाश हुआ। 5000 से ज्यादा लोग इस विनाश की चपेट में आये और अब इण्डोसल्फान के प्रयोग पर सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया है।

हरित क्रांति के आते ही, रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग प्रचलित हो गया। प्रभावशाली एवं आसानी से उपलब्धता के कारण किसानों के बीच रासायनिक कीटनाशक काफी प्रचलित हैं। अपनी फसल को बचाने के लिये किसान जागरूकता के अभाव में इन रासायनिक कीटनाशकों का अन्धाधुंध प्रयोग करते हैं। कीटनाशक दुष्प्रभावी होते हैं क्योंकि इनके सम्पर्क में आने वाले हर कीट को प्रभावित करते हैं चाहे वह कीट लाभकारी ही क्यों न हो। ऐसी फसल जिन पर रासायनिक कीटनाशक का छिड़काव होता है खाने वाले मनुष्यों और जानवरों पर घातक प्रभाव डालते हैं। शोध के अनुसार आज हर आदमी के अंदर कीटनाशक का कुछ अंश उपस्थित है यहाँ तक कि माँ का दूध भी विषैला हो चुका है। एक अच्छा कीटनाशक वही है जो पर्यावरण के लिये सुरक्षित हो, उचित मूल्य का हो और घातक कीटों का ही नाश करें परंतु रासायनिक कीटनाशक इन मापदंडों पर खरे नहीं उतरते हैं। यही कारण है कि वैज्ञानिकों और किसानों का ध्यान अब पारंपरिक खेती और जैविक कीट प्रबंधन की ओर आकर्षित हुआ है। ऐसे ही कुछ उपायों का उल्लेख इस प्रकार है :-

जैविक नियंत्रण : प्रकृति में पाये जाने वाले अनेक जीव जैसे - कीड़े-मकौड़े, सूत्रकृमि, पक्षी इत्यादि फसल संरक्षण में अहम किरदार निभाते हैं। ये जीव फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों के प्राकृतिक शत्रु के रूप में जाने जाते हैं। दुनियाभर में इनका प्रयोग काफी प्रचलित है। उदाहरण स्वरूप चना की फसल को अनेक हानिकारक कीट क्षति पहुँचाते हैं जैसे चना फली भेदक, चना का कटुआ, काला माँहू व दीमक इत्यादि। इन कीटों को नियंत्रित करने के लिये परजीवी और परभक्षियों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार, अरहर की फसल को मुख्य रूप से फली भेदक एवं फली मक्खी हानि पहुँचाते हैं। कई पक्षी जातियाँ जैसे बगुला, मैना, गुलाबी, स्टर्लिंग एवं गौरैया, चना फली भेदक एवं रबी सूडों को अत्यधिक मात्रा में खाती हुई पाई गई हैं। सूत्रकृमि भी कीटों पर घातक असर डालते हैं। इनकी उच्च प्रजनन क्षमता, उपलब्धता और पर्यावरण हितैषी होने के कारण इनके प्रयोग में वृद्धि हुई है।

पादप सुरक्षाः सभी जीव जन्तु चाहें वो मनुष्य हों, पशु-पक्षी हों या अन्य जीव हों, सभी अपनी ऊर्जा के लिए वनस्पति पर आश्रित हैं। प्राचीन काल से अनेक रोगों के इलाज के लिये वनस्पति का प्रयोग किया जाता रहा है। कीट नियंत्रण के लिये भी इसका प्रयोग प्राचीन काल से हो रहा है। अनेक पेड़ों एवं पौधों के सत् को सफल नियंत्रक के रूप में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये अजरेटम, जंगली सूरजमुखी, गेंदा और तम्बाकू की पत्तियों के रस का छिड़काव कपास की सूढ़ी, काला मोथ, मक्खी, दीमक, धारीदार बीटल, आदि कीटों के नियंत्रण में सहायक होता है। काली मिर्च और नीम के बीजों के सत् का छिड़काव कपास की सूड़ी, फुदका, कटुआ, फली मृंग, टिड्डा, घुन आदि कीटों को नियंत्रित करता है। शरीर के बीजों का छिड़काव चावल की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों के नियंत्रण में कारगर है। इसके अतिरिक्त, गेंदे के फूल और जड़, मिर्च की फली और फ्रेंच गेंदे की जड़ भी अनेक कीटों के नियंत्रण में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। जैसे माँहू, चना फली छेदक की सूढ़ी, काला मोथ, कटुआ इत्यादि।

हानिकारक कीटों का सूक्ष्मजीवियों द्वारा नियंत्रणः सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु, फफूंदी, शैवाल, विषाणु और प्रोटोजोआ कीटों के नियंत्रण के सफल माध्यम के रूप में प्रसिद्ध हो रहे हैं। यह सभी जीव, पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित हैं और मनुष्यों पर भी इनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता। खाद्य पदार्थों में भी इनके अवशेष नहीं पाये जाते हैं। इसी कारण, इन्हें प्रबल रूप से कीट नियंत्रण के लिये प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये -

1. **जीवाणु :** कीट नियंत्रण के लिये सबसे ज्यादा प्रयोग में लाया जाने वाला जीवाणु वंश *बैसिलस* के अंतर्गत आता है। यह जीवाणु कीट के अंदर प्रवेश करने के उपरांत उसके भीतर जहरीला पदार्थ पैदा करता है जो कीट के नाश के लिये जिम्मेदार होता है। जीवाणु *बैसिलस थुरिन्जेन्सिस* के अनेक प्रभेद जैसे कुर्स्ताकी, इजरायलेन्सिस और टेनेब्रिनोस बहुत से कीटों को नियंत्रित करता है।

2. **फफूँदी :** यह फफूँदी कीट के अंदर उसके क्यूटिकल के माध्यम से प्रवेश करते हैं और उसकी हीमोलिम्फ में पहुँचकर जहरीला पदार्थ पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह कीट के हीमोसील में मौजूद पोषक तत्वों

का उपयोग करते हैं। परिणामस्वरूप, कीट की प्रतिरोधक क्षमता धीरे-धीरे कमजोर हो जाती है। *बाउबेरिया बसियाना* को माँहू और मच्छर के नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता है।

3. **प्रोटोजोआ :** अन्य सूक्ष्मजीवियों की भाँति प्रोटोजोआ कीटों पर सीधे असर नहीं करता परंतु इसका संक्रमण कीटों पर कई दुष्प्रभाव डालता है। उदाहरण स्वरूप यह कीटों की प्रजनन क्षमता को कम करता है, जनसंख्या को कम करता है तथा कीट के खाने की क्षमता को भी कम करता है। *लोकस्ता नोसेम* नामक प्रोटोजोआ कीटों की रोकथाम में अहम किरदार निभाते हैं।

4. **विषाणु :** अब तक विषाणु फसलों के व्यापक विनाश के लिये जाने जाते थे। परंतु विज्ञान की उन्नति के परिणामस्वरूप, आज विषाणु को प्रयोग फसल संरक्षण में किया जाता है। तकरीबन ऐसे 1600 विषाणु हैं, जो कीड़े-मकौड़े की 1100 प्रजातियों को नष्ट करते हैं। कीटों में रोम उत्पन्न करने में मुख्य रूप से बैसिलो वाइरस प्रमुख होते हैं। चना फली भेदक की सूंडी न्यूक्लियर पॉली हाड्रडोसिस विषाणु से प्रकृति में ग्रसित हो जाती है। इनमें जनन सामग्री डी.एन.ए. के रूप में मौजूद होती है। यह कीड़े के अंदर जाने के बाद सक्रिय हो जाते हैं। अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं और धीरे-धीरे कीट को मार देते हैं।

   एन.पी.वी. विषाणु और ज़ेनेरा के कीटों को प्रभावशाली रूप से नियंत्रित करता है। जिप्सी मोथ न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस विषाणु और टसॉक मोथ एन.पी.वी. विषाणु को जिप्सी सूड़ियों और टसॉक सूड़ियों के सफल रोकथाम के लिये प्रयोग किया जाता हैं।

''हमारा पर्यावरण हमारे रवैये और अपेक्षाओं का आइना होता है''

हमारे पर्यावरण में आ रहे बदलाव, हमारे प्रकृति के प्रति गैरजिम्मेदाराना आचरण का प्रतिबिंब है। प्रकृति अपने आप में ही सम्पूर्ण भण्डार है जो कि अपनी तकनीक से सब व्यवस्थित करने में परिपक्व है। मनुष्य को चाहिये कि इन तकनीकों का प्रयोग ऐसे करे जिससे भविष्य में हमें या पर्यावरण को कोई दुष्प्रभाव न झेलने पड़े। बदलाव आरंभ हो चुका है और यदि अब भी हम न संभले तो विनाश निश्चित है।

बिना उत्साह के किसी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। ***स्वामी रामतीर्थ***

बुन्देलखण्ड में त्वरित दलहन उत्पादन परियोजना की सफलता

एस. के. सिंह, जीवेश कुमार और रियाजुद्दीन

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर और राष्ट्रीय समकेतिक नाशीजीवी प्रबंधन केन्द्र, नयी दिल्ली की सहभागिता से त्वरित दलहन उत्पादन परियोजना के अंतर्गत अरहर और चने का उत्पादन और क्षेत्रफल बढ़ाने का कार्यक्रम 2010 से 2012 तक बुन्देलखण्ड के हमीरपुर और बांदा जिले में चलाया गया। जिसमें अरहर के लिए हमीरपुर से कुरारा और मौदहा विकासखण्ड का और बांदा से कमासिन विकासखण्ड का चयन किया गया। चने के लिऐ हमीरपुर और बांदा जिले से क्रमशः कमासिन और सुमेरपुर विकासखण्ड का चयन किया गया। परियोजना के अन्तर्गत कुल 66 गाँवों में 1353 कृषकों के यहाँ फली भेदक प्रबन्धन तकनीकों पर भागीदारी प्रदर्शन कराये गये। परियोजना के अंतर्गत, एच. एन. पी. वी. और इमामेक्टिन बेन्जोएट प्रयोग किया गया, नीम की खली का सत् किसानों ने स्वयं ही तैयार किया। चने और अरहर में फसल प्रबन्धन की जानकारियाँ बुवाई से लेकर कटाई तक तकनीकी सहायकों के द्वारा प्रदान की गई और भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये। जिससे कि किसानों को रोग एवं कीटों की पहचान एवं रोकथाम की जानकारियाँ हो सके। परियोजना के दो साल पूरे होने के पश्चात्, यह देखा गया कि अरहर की वानस्पतिक अवस्था में पत्ती लपेटक, काउ बग, ग्रीन बग, एस बीबिल, बिहार की भुड़की, क्रेविग्रेला और फूल से लेकर फली अवस्था तक बिलिस्टर बीटिल, ब्लु बटर फलाई, प्लूम माथ, फली बेधक, फली मक्खी, पाड बग और स्पाटेड पॉड बोरर कीट का प्रकोप होता है लेकिन इनमें फली बेधक की विभिन्न प्रजातियाँ जैसे ब्लू बटर फलाई, प्लूम मॉथ, फली मक्खी सबसे अधिक अरहर की फसलों को क्षतिग्रस्त करती है। इस फसल पर अल्टरनेरिया ब्लाइट, बैक्टीरियल लीफ स्पाट, सर्कोस्पोरा लीफ स्पाट, उकठा, नर बन्ध्यता और पीली पित्त रोग का प्रकोप भी देखा गया जिसमें उकठा रोग प्रमुख है। इस रोग के कारण, लगभग हर साल 20-30 प्रतिशत तक उत्पादन में नुकसान का अवलोकन किया गया जबकि चने में फली भेदक कीट और उकठा रोग का प्रकोप प्रमुखता से देखा गया। चने और अरहर में नाशीजीव के प्रबंधन के विभिन्न तरीकों को किसानों को बताया गया और इन तरीकों को कृषकों ने अपनाकर चना और अरहर की उत्पादकता में 25-35 प्रतिशत तक वृद्धि प्राप्त की।

किसानों ने एच. एन. पी. वी. 25. एल. ई. प्रति हे. की दर से छिड़काव अक्टूबर में अरहर की फसल पर फूल बनने से लेकर फली बनने तक किया। जिन किसानों ने फूल बनने के समय छिड़काव किया था उन

किसान को काफी लाभ प्राप्त हुआ। अरहर की औसत उपज 12-15 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त हुई जबकि जिन किसानों ने फली बनने के बाद छिड़काव किया उन्होंने 8-9 कुन्तल प्रति हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त किया। चने की फसल में फूल बनने की अवस्था में छिड़काव करने पर 14-16 कुन्तल और फली बनने की अवस्था में छिड़काव करने पर 9-10 कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से उपज प्राप्त हुई। इससे यह ज्ञात होता है कि फली बेधक का प्रबन्धन अगेती अवस्था में करना आसान होता है। कृषकों द्वारा समन्वित कीट प्रबन्धन जैसे गर्मी की जुताई, समय से बुवाई, संस्तुत रोगरोधी प्रजातियों के साथ ही साथ खरपतवार नियंत्रण के प्रभाव के आधार पर अपनाने हेतु समय से उपलब्धता पर कृषकों ने विचार व्यक्त किए।

परियोजना के कार्यन्वयन से पहले, चयनित विकास खण्डों के किसान कीट प्रबन्धन के लिए केवल परम्परागत कीटनाशियों जैसे इण्डोसल्फान, मोनोक्रोटोफास और डाइमेथोएट आदि का छिड़काव किया करते थे। लेकिन परियोजना के दो वर्ष पूरे होने के पश्चात, किसान नवीन कीटनाशियों जैसे इण्डोक्साकार्ब, इमामेक्टिन बेन्जोएट, इमिडाक्लोप्रिड के बारे में जानकारियाँ हुई और इन्हें अरहर और चने की फसल पर छिड़काव किया गया और इनके प्रभावों की क्षमता से भी किसान बहुत प्रभावित हुए। किसानों को फूल बनने की अवस्था में एच.एन.पी.वी. 250 एल.ई. का एक छिड़काव और इमामेक्टिन बेन्जोएट 200 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने पर काफी अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ। एच.एन.पी.वी. 250 एल.ई. और इमामेक्टिन बेन्जोएट का छिड़काव करने पर लगभग 15-18 कुन्तल/हेक्टेयर उत्पादकता अरहर में और 18-20 कुन्तल/हेक्टेयर चने में पायी गयी जबकि बिना नियंत्रण से उत्पादकता लगभग 8-10 और 12-14 कुन्तल प्रति हेक्टेयर क्रमशः अरहर और चने में प्राप्त की गयी। इस परियोजना के अन्तर्गत, जितने किसानों ने एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की तकनीक अपनायी, उन किसानों ने अरहर की उत्पादकता 15-16 कुन्तल और शुद्ध लाभ रु. 35,000-39,000 प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त किया जबकि गैर एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन वाले किसानों ने उत्पादकता 9-10 कुन्तल और शुद्ध लाभ रु. 22,000-27,000 प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त किया। चने की फसल में जिन किसानों ने एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन तकनीकी अपनायी। उनकी उत्पादकता लगभग 18-20 कुन्तल और शुद्ध लाभ रु. 35,000-37,000 प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त किया जबकि गैर एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन वाले किसानों ने उत्पादकता 10-11 कुन्तल और शुद्ध लाभ रु. 23,000-26,000 प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त किया।

किसानों ने एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन की तकनीकी को सराहा और परियोजना के कार्यकाल समाप्ति के पश्चात भी हमीरपुर और बांदा के चयनित विकासखण्डों के किसानों ने एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन तकनीकी अपनाकर अरहर और चना फली भेदक प्रबन्धन द्वारा अधिक उपज प्राप्त कर रहे हैं। परियोजना की समाप्ति के पश्चात भी हमीरपुर और बांदा के विकासखण्ड कुरारा, मौदहा, सुमेरपुर और कमासिन के किसान चने और अरहर के लिए, समय से बुवाई, बुवाई से पूर्व बीज उपचारित करना, समय-समय पर खरपतवार निकालना, चने के साथ सरसों या मसूर या धनिया की सहफसली खेती, अरहर के साथ ज्वार अथवा बाजरा

की सहफसली खेती, अधिक वर्षा होने पर जल निकास की व्यवस्था करना, चने की फसल की लाइन से बुवाई, रोगग्रसित पौधों को जड़ से उखाड़कर नष्ट कर देना, फूल बनने की अवस्था में नीम की खली का 5 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करना और फली बनने की अवस्था में इण्डोक्साकार्ब 14.5 एस. सी. की मात्रा 0.5 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करके फली भेद का प्रबन्धन करके अधिकतम उपज व लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

दलहन द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार

पुरूषोत्तम व राजेश कुमार

महात्मा गांधी ने कहा था कि ग्रामीण भारत इसलिए गरीब है क्योंकि वहां उद्यम की कमी है। आजकल नई आर्थिक व्यवस्था के अनुसार सामाजिक पिरामिड में सबसे निचले स्तर तक लाभ पहुँचाने की बात की जा रही है। देश की समृद्धि का सबसे बड़ा स्रोत माने जाने वाली कृषि युवाओं को आकर्षित कर पाने में विफल रही हैं जबकि भारतवर्ष की जनसंख्या में युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व लगभग 40 प्रतिशत है। आर्थिक तंगी से जूझ रहे इस वर्ग के लिए रोजगार के अवसर कैसे पैदा किये जायें, यह एक चिन्ता व चिन्तन का विषय है। अतः ग्रामीण क्षेत्र में दलहन द्वारा उद्यमिता विकास की सम्भावनाओं को तलाश करना आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार विकास के लिए कुछ मानकों को ध्यान में रखकर कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है। उद्यमी व्यक्ति का सही चुनाव कैसे किया जाये, इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उद्यमी व्यक्ति में निर्णय व जोखिम लेने की क्षमता होनी चाहिए व अपनी आर्थिक स्थिति को सुद्रढ़ करने की दृढ़ता तथा अभिलाषा भी हो। लाभ की स्थिति में धन के कुशल उपयोग का हुनर भी होना चाहिए और लक्ष्य को निश्चित कर उसको पूर्ण करने की क्षमता भी हो। युवा वर्ग या कृषक के चुनाव में स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र, स्वंयसेवी संस्थाओं राष्ट्रीय व सहकारी बैंक, कृषि व उद्यमिता विभाग से भी सम्पर्क करके सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

सामुदायिक दलहन बीज उत्पादन

अनेक प्रयासों के उपरान्त भी अधिकतर कृषक घरेलू व पुरातन दलहन बीजों की बुआई करते हैं। इससे उनको उचित उत्पादन व आय नहीं मिल पाती। सरकारी संस्थाओं में पहुंचने वाले बीज से आपूर्ति कुछ चुनिन्दा व प्रभावकारी कृषकों तक ही सीमित रहती है। गुणवत्तायुक्त बीज की उपलब्धता दूर-दराज के गांवों में नहीं हो पाती। अतः ''आर्दश बीज ग्राम पद्धति'' के माध्यम से सामुदायिक प्रयास से गाँव के स्तर पर बीज उत्पादन का कार्य सम्भव है। इसके लिए दलहन की विभिन्न प्रमुख फसलों के क्षेत्रफल व कुल बीज की आवश्यकता का ग्राम स्तर पर आंकलन करने के उपरान्त आवश्यक बीज की मांग को गाँव में ही पैदावार की जा सकती है। तद्नुसार उचित कृषकों व अच्छे खेतों का जो सड़क आदि के साथ हों उनका चयन करें। कृषकों के समूह को दलहन बीज उत्पादन तकनीक के बारे में प्रशिक्षण कराके उचित ज्ञान व कौशल भी अनिवार्य है।

दलहन बीज उत्पादन के लिए बीज उत्पादक समूह का गठन भी किया जा सकता इससे उत्पादित बीज के विक्रय में आसानी रहती है। इन समूहों में कृषकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए। कृषक

सहभागिता द्वारा बीज उत्पादन करके गाँव को दलहन उत्पादन में स्वावलम्बी बनाकर कृषकों की आय को आसानी से बढ़ाया जा सकता है। दलहनी फसलों का बीज उत्पादन करके सामान्य दलहनों की अपेक्षा कृषक 20-30 प्रतिशत तक अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं तथा क्षेत्र में बीज उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। सामुदायिक प्रयासों से बीज उत्पादन तथा प्रसंस्करण की कुल लागत को कम करके शुद्ध लाभ को बढ़ाया जाता है।

दलहनों की जैविक खेती द्वारा रोजगार

जैविक खेती को विभिन्न नाम कुदरती खेती, ऋषि खेती, विषमुक्त खेती, शून्य लागत खेती व ऑर्गनिक कृषि के नाम से जाना जाता है। खेती की इस विधा में प्रकृति के साथ सामन्जस्य बनाकर कृषि क्रियायें की जाती हैं। जैविक खेती के अपने कुछ मानक होते हैं। किसी खेत में जैविक खेती के इच्छुक कृषक को उसमें रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव को समाप्त करना होता है। इसके लिए उसे कम से कम 3 वर्ष का समय लग सकता है। यह समय सीमा असिंचित क्षेत्र या जहां पर सघन खेती का प्रचलन नहीं है वहाँ या कम 1-2 वर्ष भी हो सकती है। क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशी का प्रयोग नगण्य होता है। दलहनी फसलों में अपेक्षाकृत कम नत्रजन की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि दलहन वायुमण्डलीय नत्रजन का अपनी जड़ों की ग्रन्थियों के माध्यम से अवशोषण करती हैं। इस प्रकार, लगभग 40 कि.ग्रा./हे. नत्रजन खेत को स्वतः प्राप्त हो जाती है। अतः अन्य फसलों से दलहनों की जैविक खेती सुगम है।

जैविक खेती के इच्छुक कृषकों को सर्वप्रथम अपना खेत निश्चित करना पड़ेगा। यह निर्णय सोंच समझकर लें कि किस खेत या चक को जैविक फार्म बनाना चाहते हैं। उन्हें अपनी फसल का रजिस्ट्रेशन व निरीक्षण भी करना है। जैविक खेती से संबंधित पूरा लेखा-जोखा कृषक को रखना पड़ता है।

जैविक खेती से संबंधित कुछ अवधारणायें जुड़ी हैं कि क्या जैविक खेती सम्भव व लाभकारी हो सकती है। अध्ययन के परिणाम से पता चलता है कि खेत जो रासायनिक उर्वरकों के आदी हो चुके हैं, वहां पर अचानक इस पद्धति के प्रयोग से अपेक्षाकृत आरम्भिक लाभ कम होता है परन्तु जहां पर इन उर्वरकों का प्रयोग कम है वहां पर आरम्भ से ही कृषक लाभ में रहे हैं। यदि आरम्भिक वर्षों में फसल का उत्पादन कम भी मिला है तो कम लागत व बेहतर बाजार मूल्य के कारण शुद्ध लाभांश अधिक होता है। जैविक दलहन का बाजार मूल्य सामान्य दलहनों की अपेक्षा 20-30 प्रतिशत तक अधिक होता है। जैविक दलहन उत्पादन के लिए जैविक उत्पादक समूह का गठन भी किया जा सकता। इससे उत्पादित दलहन के विक्रय में आसानी रहती है। इन समूहों में कृषकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होना चाहिए।

जैविक खेती का एक अन्य लाभ है भूमि को स्वस्थ रहना। इससे मृदा की भौतिक व रासायनिक संरचना में सुधार होता है। जिससे युगों तक मृदा को खेती के लायक बनाये रखा जा सकता है। ऐसे कृषक जिनके पास पशुओं की संख्या पर्याप्त रहती है उन्हें गोबर व पशुमूत्र की प्रचुरता के कारण जैविक खेती को अपनाना

सरल व कम लागत वाली तकनीक सिद्ध होगी। कृषक सहभागिता द्वारा सामुदायिक प्रयासों से जैविक खेती की कुल लागत को कम करके शुद्ध लाभ को बढ़ाया जाता है।

दलहन प्रसंस्करण द्वारा रोजगार

दलहन को प्रमुख रूप से प्रसंस्करण के उपरान्त ही प्रयोग में लाते हैं। देश के कुल दलहन उत्पादन का लगभग 15 प्रतिशत समूचे दाने, 10 प्रतिशत बीज व प्रमुख 75 प्रतिशत व्यवसायिक मिलों में आ जाती हैं जिससे लाभ का एक प्रमुख हिस्सा कृषक के हाथ से निकल जाता है। दलहनों की अपेक्षा प्रसंस्करण दालें अधिक लाभ देती हैं। यदि प्रसंस्करण का कार्य ग्रामीण क्षेत्र में युवा वर्ग या कृषकों द्वारा ही होने लगे तो कृषकों की आमदनी व ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुद्रढ़ किया जा सकता है। रोजगार में स्वावलम्बन के लिए इसे लघु व कुटीर उद्योग के रूप में विकसित करने की जरूरत है। भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर ने प्रसंस्करण के लिए लघु दाल चक्की, मिनी दाल मिल व बहुउद्देशीय ग्राइन्डर विकसित किये हैं।

दलहनों को यदि प्रसंस्करण करके दाल के रूप में विक्रय किया जाये तो इससे लगभग दो गुना लाभ स्वतः प्राप्त होता है। जब दलहन को दाल के रूप में भण्डारित किया जाता है। तो इसमें अपेक्षाकृत कीट प्रकोप भी कम होता है। प्रसंस्करण के उपरान्त शेष बच गयी भूसी या चूनी के बिस्कुट, नमकीन, पूड़ी जैसे कई स्वादिष्ट स्वास्थ्यपरक पदार्थ भी बनाये जा सकते हैं। रेशे की मात्रा की अधिकता के कारण पाचन संबंधी शारीरिक विकारों को भी इनके उपयोग से दूर किया जा सकता है। सामान्यतः कृषक दाल की भूसी व चूनी को पशुओं के खिलाने के काम में लाते हैं।

दलहन के संबंध में रोजगार की कुछ अन्य सम्भावनाएं भी हैं।

1. अरहर की लकड़ी से विभिन्न आकार व प्रकार की टोकरी का निर्माण किया जा सकता है। सामान्यतः इस प्रकार की टोकरियों की माँग फल उद्योग, मिट्टी व कोयले की ढुलाई, चप्पल उद्योग जैसे अनगिनत उद्यमों में वृहद स्तर पर रहती है। सामान्यतः एक व्यक्ति 6-8 टोकरी का निर्माण प्रतिदिन कर लेता है तथा बाजार में प्रति टोकरी रु. 60-80 तक बिक जाती है। इस उद्यम से जुड़े कुशल कारीगर अरहर की मड़ाई के उपरान्त लकड़ी को सम्पूर्ण वर्ष के लिए कृषकों से खरीदकर यथाशक्ति भण्डारित कर लेते हैं। इस व्यवसाय से जुड़े लोगों को संगठित कर वित्तीय मदद की दरकार तथा मार्गदर्शन आदि की आवश्यकता है।
2. आधुनिक विपणन (ई-विपणन) के माध्यम से शुद्ध दाल सीधे कृषकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचायी जा सकती है। इससे कृषक तथा उपभोक्ता दोनों ही लाभ की स्थिति में रहेंगे।
3. बीज विधायन सयंत्र व ग्रेडर मशीन को ग्रामीण अंचलों में बढ़ावा देकर कृषक के उत्पाद को ग्रेडिंग कर विभिन्न श्रेणी में दलहनों का विक्रय किया जा सकता है इससे कृषकों तथा उद्यमियों दोनों को लाभ होगा।
4. पैकेजिंग व डिब्बाबन्द तकनीक के प्रयोग से बेकरी, नमकीन, बिस्कुट व अन्य त्वरित भोज्य पदार्थ का निर्माण कर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

दलहनी फसलों के लिए कारगर खरपतवारनाशी : इमॉझिथापर

कृष्ण औतार, उम्मेद सिंह, सी.एस. प्रहराज एवं आर.के. सिंह

फसल उत्पादन में खरपतवार बहुत ही घातक एवं विरल जैविक बाधा है। यह दलहन उत्पादन को अदृश्य रूप में बुवाई से लेकर कटाई तक नुकसान पहुँचाता है। खरपतवार उत्पादकता कम करने के अलावा उसकी गुणवत्ता को भी कम करता हैं एवं कुल उत्पादन लागत को बढ़ाता है। कृषि नाशक जीव के द्वारा कुल नुकसान का लगभग 37% योगदान खरपतवारों का हैं। अन्य नाशक जीव, कीड़े, कीट, फफूँद, रोग की तरह खरपतवार भी दलहन फसलों में सर्वव्यापक हैं जो सभी प्रकार की दलहन फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। खरपतवार प्रतिस्पर्धा ओजस्वी होती हैं, जो कि मृदा, जलवायु, फसल तंत्र एवं प्रबन्धन कारकों पर निर्भर करती हैं। अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि प्रभावकारी खरपतवार प्रबन्धन से प्रति वर्ष रु. 1,05,036 करोड़ की अतिरिक्त आमदनी हो सकती हैं। वर्तमान में तकरीबन रु. 100 मिलियन प्रतिवर्ष खरपतवार प्रबन्धन पर खर्च किया जाता है। खरपतवार से दलहन फसलों की पैदावार में औसतन 50-60 प्रतिशत तक की अधिकतम कमी देखी गयी है, जो कि दलहन जाति एवं वंश तथा प्रबन्धन प्रणालियों पर निर्भर हैं।

दलहनी क्षेत्रों में विगत कुछ वर्षों से देखा गया है कि खेती में खरपतवार निकालने के लिये श्रमिकों की प्रतिदिन मजदूरी में बढ़ोत्तरी असहनीय हो चुकी है। इसका मुख्य कारण केन्द्र सरकार द्वारा संचालित मनरेगा योजना भी है। मनरेगा से ग्रामीणों को स्थानीय रोजगार उपलब्धता के कारण खेती से जुड़े कार्य जैसे खरपतवार निकालने को कम महत्व दिया जा रहा हैं। मनरेगा में मजदूरी अधिक एवं श्रम कम होना कृषि कार्यों को प्रभावित कर रहा है।

जिन क्षेत्रों में श्रम उपलब्धता कम एवं मजदूरी अधिक है उन क्षेत्रों में खरपतवारनाशी किसानों के लिये बड़ा वरदान साबित हो रहा है। मजदूरों की उपलब्धता की कमी सबसे पहले पंजाब में देखी गयी, तत्पश्चात् हरियाणा, पश्चिमी उ.प्र. एवं उत्तराखण्ड में देखी गयी। अब यह कमी मनरेगा के कारण लगभग सभी राज्यों में यह देखने में आ रही है।

इमॉझिथापर

इमॉझिथापर एक इमीडाजेल यौगिक है जो रचनात्मक खरपतवारनाशी के रूप में प्रयोग होता है। यह यौगिक श्रृंखला बध्य एमीनो एसिड, आयसोलूसीन, लूसीन एवं वैलीन की मात्रा को कमकर खरपतवारों को

मारता है। यह एसीटोहाइड्रोक्सी सिन्थेज (एक प्रकार का एन्जाइम) को बाधित करता है। यह एन्जाइम बाधिक होने की वजह से खरपतवार में प्रोटीन निर्माण विघटन होने लगता है, जो डी.एन.ए. संश्लेषण एवं कोशिका वृद्धि को बाधित करता है। इमॉझिथापर प्रणालीगत खरपतवारनाशी होने के कारण पहले पत्तियों एवं जड़ों द्वारा अवशोषित होता है, फिर जाइलम एवं फ्लोएम में स्थानान्तिरित होते हुये मेरिस्मेटिक क्षेत्र में संचय हो जाता है। इस प्रकार खरपतवारों को मारता है एवं दलहनी फसलों को सुरक्षित करता है।

नियोजित दलहनी फसलें :- यह मुख्यतः सभी दलहनी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है। जैसे मूँग, उर्द, अगेती अरहर, पिछेती अरहर, लोबिया, राजमा, मटर, चना, मसूर इत्यादि।

नियोजित खरपतवारः यह मुख्य रूप से वार्षिक घास, बहुवर्षीय घासें, एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है। जैसे : छोटा धतूरा, छोटा गोखरू, जंगली चौलाई, जंगली सरसों, वनरा-वनरी, मोथा, साँवाघास, पत्थरचट्टा, साठा, भॉकड़ी धिदनघास, बड़ी दूधी, जंगली मिर्च, कुन्द्रा, कन्ना, कुशघास इत्यादि।

व्यापारिक नाम :- इमॉझिथापर को कई व्यापारिक नामों से जाना जाता है जैसे कन्टूर, वीडलोक परस्यूट, ओवर टोप, परस्यूट प्लस इत्यादि। व्यापारिक नाम निर्माण कम्पनियों द्वारा निर्धारित होता है।

प्रयोग मात्रा :- प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि इमॉझिथापर 50-80 मि.ली. सक्रिय संघटक प्रति हैक्टर में छिड़काव करना चाहिये। जहाँ पर मिट्टी बलुई या बलुई दोमट हो एवं खरपतवार सघनता कम हो तो 50-60 मि.ली. सक्रिय संघटक की मात्रा उपर्युक्त है। परंतु चिकनी मिट्टी जिसमें सिल्ट की मात्रा अधिक हो एवं खरपतवार सघनता अधिक हो तो 80 मि.ली. इमॉझिथापर (सक्रिय संघटक) प्रति हैक्टर की मात्रा पर्याप्त होगी। छिड़काव के लिये पानी की मात्रा 300-400 लीटर प्रति हेक्टयर (खरीफ ऋतु) पर्याप्त है। रबी दलहनों में छिड़काव के लिये पानी की मात्रा 400-500 लीटर प्रति हैक्टर की जानी चाहिये।

छिड़काव हेतु घोल कैसे बनाए - उदाहरण के तौर पर हम परस्यूट (10% एस एल) लेते हैं। परस्यूट 500 मि. ली. के साथ अमोनियम सल्फेट (सायबूस्ट) 500 ग्राम एवं सायस्प्रेड (स्टीकर, स्प्रेडर, एक्टीवेटर) 375 मि.ली. आता है। इन तीनों की मात्रा क्रमशः 1:10:75 (परस्यूट, अमोनियम सल्फेट, सायस्प्रेड) के अनुपात में पानी में अच्छी तरह मिला लें। घोल प्लास्टिक की बाल्टी में बनाएं एवं फिर इसे स्प्रेयर की टंकी में उड़ेलकर तुरन्त छिड़काव शुरू कर दें।

व्यापारिक उत्पाद की मात्रा :- प्रायः सभी खरपतवारनाशी विभिन्न व्यापारिक नामों से बाजार में बिकते हैं। जिनमें सक्रिय संघटक की मात्रा कम्पनी के उत्पादन पर निर्भर करती है। व्यापारिक उत्पाद की मात्रा घोल बनाने के लिये छिड़काव करने से पहले निम्नांकित सूत्र द्वारा निर्धारित करना चाहिए।

$$\text{व्यापारिक उत्पाद की मात्रा (कि.ग्रा. या ली. प्रति है.)} = \frac{\text{खरपतवारनाशी की संस्तुत मात्रा (कि.ग्रा. सक्रिय संघटक प्रति है.) x क्षेत्रफल हैक्टेयर x 100}}{\text{खरपतवारनाशी की सांद्रता (\%)}}$$

उदाहरण :- एक किसान अपने मूँग के खेत (1000 वर्ग मी.) में इमॉझिथापर (परस्यूट 10% एस एल) का छिड़काव करना चाहता है।

क्षेत्रफल - 1000 वर्ग मीटर

खरपतवारनाशी - परस्यूट 10% एस एल

संस्तुत मात्रा - 0.06 ली./हेक्टेयर

हल :-

$$\text{व्यापारिक उत्पाद की मात्रा (ली. प्रति है.)} = \frac{0.06 \times 0.10 \times 100}{10}$$

$$= 0.06 \text{ लीटर}$$

$$= 60 \text{ मि.ली.}$$

उत्तर : 1000 वर्ग मी. क्षेत्रफल के लिए 60 मि.ली. (0.06 ली.) व्यापारिक उत्पाद (परस्यूट) की आवश्यकता होगी।

छिड़काव का समय एवं विधि

(अ) **बुवाई से पूर्व छिड़काव** - इस विधि में इमॉझिथापर का उचित घोल बनाकर खेत की जुताई करने के बाद, परन्तु फसल की बुवाई से पहले छिड़काव किया जा सकता है। अन्यथा खेत की जुताई पश्चात इमॉझिथापर को मिट्टी में मिलाकर खेत में फैला देने से भी खरपतवार मर जाते हैं।

(ब) **उद्ववन-पूर्व छिड़काव** - इस विधि में खरपतवारनाशी का उचित घोल बनाकर दलहनी फसलों की बुवाई के पश्चात् परंतु फसल अंकुरण से पहले छिड़काव किया जा सकता है।

(स) **उद्ववन-पश्चात् छिड़काव** - इस विधि में खरपतवारनाशी का उचित घोल बनाकर फसल की बुवाई के पश्चात जब फसल एवं खरपतवार दोनों का अंकुरण हो जाए तब छिड़काव किया जाता है। मुख्यतः जब खरपतवार की दो पत्तियाँ उग आती हैं उस अवस्था में छिड़काव करना ज्यादा प्रभावशाली है। उचित समय बुवाई के 20-25 दिन के दौरान है।

इमॉझिथापर के छिड़काव पूर्व मुख्य सावधानियाँ :- यह खरतपवारनाशी बहुत ही जहरीला पदार्थ है। इसके प्रयोग से पूर्व एवं प्रयोग के दौरान अधोलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिए -

(अ) खरपतवारनाशी का इस्तेमाल विशेषज्ञ की निगरानी में ही करना चाहिए।

(ब) खरपतवारनाशी का छिड़काव करने वाला व्यक्ति अच्छी तरह से अपने मुँह, हाथ एवं पैरों को कपड़े से ढक लें या छिड़काव हेतु प्रयोग होने वाले दस्ताने, मुखौटा, तहबन्द *(एप्रन)* व जूते पहनकर ही छिड़काव करें।

(स) इमॉझिथापर की उचित मात्रा, उचित समय एवं उचित घोल का ध्यान रखना अति आवश्यक है अन्यथा इसके गलत परिणाम भी हो सकते हैं। फसल जल या मर भी सकती है।

(द) खरपतवारनाशी शरीर के किसी अंग से स्पर्श नहीं करना चाहिये। इसे बच्चों की पहुँच से दूर रखें।

(य) इस्तेमाल करने से पहले प्रयोग विधि एवं सावधानियाँ भली-भाँति समझ लें।

(र) ध्यान रहे कि छिड़काव हवा के विपरीत दिशा में करें।

(ल) छिड़काव के दिन मौसम साफ हो, बारिश होने की सम्भावना हो तो छिड़काव नहीं करे। छिड़काव के पश्चात 4-5 घन्टे तक बारिश नहीं होनी चाहिए अन्यथा खरपतवारनाशी कारगर नहीं होगा।

सुख साधनों में नहीं है, यह तो मन की अनुभूति है। ***स्वामी विवेकानन्द***

भारत में दलहन उत्पादन

दीपक सिंह, सुशील कुमार सिंह, अशोक कुमार परिहार, अभिषेक बोहरा और श्रीपद भट

भारतीय कृषि में दालें एक निर्णायक भूमिका निभा रही हैं। ये दालें भारतीय शाक-आहार में प्रोटीन के मुख्य स्रोत का काम करती हैं। विश्व स्तर पर भारत दालों का सबसे बड़ा उत्पादक (वैश्विक उत्पादन का 25 प्रतिशत) है। भारत की मुख्य दलहनी फसलें चना, अरहर, मूँग, उर्द, मसूर और मटर हैं। वर्तमान समय की लगभग 1.2 अरब जनसंख्या को संतुलित आहार उपलब्ध कराना और जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन और उत्पादकता को बनाये रखना, देश के समक्ष चुनौती हैं। मूल्य निर्धारण, विभिन्न वृहित आर्थिक नीतियाँ जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण, आयात-निर्यात, सार्वजनिक वितरण आदि उत्पादन का एक मुख्य घटक है। इसलिए दालों के उत्पादन में अस्थिरता, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देश की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव डालती है। वर्तमान समय में भारत में दालों की वार्षिक मांग लगभग 210 लाख टन है, जबकि दालों का वार्षिक उत्पादन लगभग 170 लाख टन है और भविष्य में इस अंतर में और वृद्धि होने की आशा है। इसलिए देश की घरेलू मांग को पूरा करने के लिए 40 लाख टन के आसपास दालों का आयात किया जा रहा है, जो कि रुपये की डॉलर के मुकाबले गिरावट के कारण महंगा होता जा रहा है।

देश में 1980 के दशक से लेकर आज तक, दालों के उत्पादन और क्षेत्र में 1.52 प्रतिशत और 1.61 प्रतिशक की गिरावट आई है। पिछले दस वर्षों में (2001 से लेकर 2012 तक) दालों के क्षेत्र, उत्पादन और उपज का सूचकांक क्रमशः 1.70 प्रतिशत, 3.47 प्रतिशत और 1.91 प्रतिशत हो गया है। वर्ष 2011-12 में दालों का कुल उत्पादन लगभग 172 लाख टन और क्षेत्र फल 240-250 लाख हेक्टेयर है। दलहनी फसलें वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। भारत में मुख्य दाल उत्पादक राज्यों में, मध्य प्रदेश (24%), उत्तर प्रदेश (16%), महाराष्ट्र (14%), राजस्थान (6%), आंध्र प्रदेश (10%), और कर्नाटक (7%) आते हैं, जो कि कुल उत्पादन में 77% की भागीदारी रखते हैं। कृषि के क्षेत्र में आई हरित क्रांति के अभिग्रहण का मुख्य और प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर ही पड़ा था। दालों के उत्पादन और क्षेत्र में इसका प्रभाव सीमित और बहुत ही कम रहा था।

भारत सरकार ने दालों का उत्पादन बढ़ाने के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाये हैं। भारत ने वर्ष 2011-12 में $1.85 अरब की तुलना में 2012-13 में $ 2.33 अरब की दालों का आयात किया है। फसल वर्ष 2012-13 में भारत ने 184.5 लाख टन का रिकॉर्ड दलहन उत्पादन हासिल किया है (चौथे अग्रिम अनुमान) जिसका मुख्य श्रेय भारत के किसान, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, उन्नत अनुसंधान प्रौद्योगिकियों, विस्तार गतिविधियों और सरकार के द्वारा चलायी गयी विभिन्न योजनाओं को जाता है।

लेकिन अभी भी न्यूनतम समर्थन मूल्य इतना अधिक नहीं हैं कि शुद्ध लाभ प्राप्त करने में, दलहन खाद्यान्नों से प्रतिस्पर्धा कर सकें।

हालांकि भारत अधिक उत्पादन करके आयात को कम कर सकता है। लेकिन खाद्य प्रसंस्करण के लिए दालों की गुणवत्ता के लिए प्रोटीन का मुख्य घटक बनाने में नीतिगत पहल का अभाव है। भारत में दालों की देखरेख और संग्रहण की तकनीकियों और बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। यह अनुमानित है कि फार्म स्तर पर 50 प्रतिशत और टेबल स्तर पर 40 प्रतिशत दालों की बरबादी हो रही है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए स्पष्ट रणनीति और उच्च उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए सभी स्तरों पर दालों की बर्बादी बचाने की योजनायें लाने का यह उचित अवसर है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में दालों को सम्मिलित करने से देश भर में उच्च उत्पादकता और बेहतर पारिश्रमिक सुनिश्चित होगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य तथा केन्द्र सरकारों को सुनिश्चित न्यूनतम मूल्य पर किसानों से सीधी खरीद के लिए आगे आना चाहिए ताकि किसानों को अधिक उत्पादन करने का प्रोत्साहन मिले और कृषकों की आमदनी में वृद्धि हो सके।

आयात

भारत में कम उत्पादन और प्रोटीन का अपरिहार्य श्रोत होने के कारण दालों के अप्रतिबंधित आयात की अनुमति है। भारतीय बाज़ार बहुत ही मूल्य संवेदनशील है और ज्यादातर उत्पाद जो ट्रेड किये जाते हैं, उनको बहुत कम से लेकर औसत गुणवत्ता का दर्ज़ा मिला हुआ है। यू.एस.डी.ए. के अनुसार, मटर आयात में भारत सबसे बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बाद काबुली चना, अरहर और मसूर का आयात किया जाता है। अरहर, मूँग और राजमा मुख्यतः म्यांमार से आयात किये जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ कि कम्पनियाँ, गुणवत्ता और कीमत में काफी विविधता के साथ ही कम लागत और निकटता की वजह से दालें जल्दी उपलब्ध करवाती हैं। भारत सूखे मटर और काबुली चना मुख्यतया कनाडा और ऑस्ट्रेलिया से आयात करता है। हरी और पीली मटर कनाडा और कम कीमत का धुंधला काले रंग का मटर ऑस्ट्रेलिया से आयात करता है। निम्नलिखित मुख्य बाजार हैं जो भारत के पूर्वी प्रदेशों मुख्यतया कोलकाता से विपणन कर रहे हैं:

प्रमुख आयात बाज़ार :

अरहर : म्यांमार, तंजानिया और चीन

मूँग : म्यांमार, सिंगापुर, चीन और ऑस्टे लिया

हरी और पीली मटर : कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, म्यांमार, हंगरी, तंजानिया और अमेरिका

मंसूर : नीदरलैंड, सीरिया, तुर्की, कनाडा व चीन

काबुली चना : ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, तुर्की, ईरान और म्यांमार

भारत में खाद्य सुरक्षा

दीपक सिंह, सुशील कुमार सिंह और अशोक कुमार परिहार

हाल के दशकों में गरीबी को कम करने में महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद, दुनिया में अभी भी 1.2 अरब अत्यंत गरीब लोग हैं। इसके अलावा, अभी भी कुपोषण से 0.87 अरब और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से 2 अरब लोग पीड़ित हैं।

खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, खाद्य सुरक्षा वह है जिसके अंतर्गत सभी नागरिक हर वक्त पर्याप्त, सुरक्षित एवं पौष्टिक आहार की भौतिक और आर्थिक रूप में आपूर्ति कर सके जो कि सक्रिय और स्वस्थ जीवन यापन के लिए आवश्यक होता है।

वर्तमान स्थिति

अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान की ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2011 के अनुसार भारत में 60 मिलियन बच्चे कम वजन और कुपोषण के शिकार हो रहे हैं एवं खाद्य आपूर्ति के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक होने के बावजूद, भारत की 21 प्रतिशत आबादी कुपोषण का शिकार है। भारत में कृषि, सकल घरेलू उत्पाद में एक महत्वपूर्ण योगदान करती है, इसलिए सम्पूर्ण आर्थिक विकास और गरीबी कम करने के लिए कृषि में विकास आवश्यक है।

भारत में निजी और सार्वजनिक निवेश और नीतियाँ जो कृषि विकास को प्रोत्साहित करती हैं, के अच्छे समूह हैं। इसके विपरीत यह भी सत्य है कि यहाँ पर ऐसी नीतियाँ और निवेश भी हैं जो कृषि विकास को बाधित या प्राकृतिक संसाधनों पर नकारात्मक प्रभाव एवं कृषि को कम टिकाऊ बना रहे हैं। खराब प्रशासन और नागरिक अशांति भी कृषि विकास दर में कटौती, सुशासन और स्थिरता कृषि विकास में मद्द करती है। सार्वजनिक निवेश कार्यक्रम की सहायता द्वारा गरीबी में कमी लाने में एवं साथ ही कृषि में वृद्धि करने पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। यदि नीतियाँ पूर्ण रूप से सक्षम नहीं हैं या शासन बुरा है, तो बड़े पैमाने पर बड़े कार्यक्रमों में बहुत कम काम करने की संभावना है। सफल परियोजनाएं और अच्छी नीतियाँ कृषि विकास को बढ़ाने में और गरीबी उन्मूलन में प्रभावी होती हैं लेकिन इसको अधिक प्रभावी बनाने के लिए अच्छी नीतियों के साथ अच्छा वातावरण व सुशासन आवश्यक है।

भारत में कृषि उत्पादकता में वृद्धि पिछले दो दशकों के दौरान धीमी रही है, और फसल की पैदावार में एशिया के अधिकतर देशों से नीचे आंकी गयी है। समय के साथ पारंपरिक वस्तुएं, फल और सब्जियों के

अलावा, पोल्ट्री और डेयरी उत्पादों की माँग भी बढ़ रही है। इसीलिए भारत खाद्यान्न असुरक्षित लोगों की संख्या के लिए मुख्य स्थान बना हुआ है।

एक सकारात्मक अनुमान यह भी है कि भारत में 2025 तक पर्याप्त भोजन के उत्पादन में आत्मनिर्भर रहने की उम्मीद है। हालांकि, खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में कुछ अक्षमताएं अभी भी बड़े पैमाने पर हैं, जो कि भविष्य में आत्मनिर्भरता को कमजोर और कुपोषण को स्थायी बना सकती हैं।

खाद्य सुरक्षा के प्रमुख कारक

फसलों में विविधता लाने के लिए रतालू, हरी पत्तेदार सब्जियों और खेती में अन्य फसलों को लाने पर जोर दिया जा रहा है। इनमें से अधिकांश अन्य फसलें जो की ख़राब मौसम की स्थिति के कारण विफल हो जातीं थी उनको शोधकर्ता ख़राब मौसम में भी टिके रहने के लिए तैयार कर रहे हैं।

भारत फसल पौधों के सभी उपलब्ध आनुवंशिक विविधता के संरक्षण के लिए जीन/बीज बैंकों की स्थापना में भारी निवेश कर रहा है। भारत में खाद्य सुरक्षा के लिये विदेशी फर्मों को 51 प्रतिशत की एक अनुबंध के साथ खुदरा क्षेत्र में ज्यादा निवेश की अनुमति दी गई है।

भारत में खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए नए कानून और योजनाओं के विकास पर सभी का ध्यान केन्द्रित है जैसे कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा), एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस), मध्याह्न भोजन (एमडीएम) और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस)।

इसके अलावा, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक, 2013, कार्यक्रम जब लागू होगा, जिसमें 67 प्रतिशत जनसंख्या के लिये चावल, गेहूँ और मोटे अनाज के लिए 62 टन की आपूर्ति पर सालाना 1250 अरब रुपये खर्च होने का अनुमान सरकारी खर्च के साथ दुनिया में सबसे बड़ा हो जाएगा।

इसलिए भारत विभिन्न स्थितियों में खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के साथ, अपने विविध और गतिशील क्षमताओं के साथ आज और आने वाले कल के लिए अपने सभी नागरिकों के लिए खाद्यान्न उपलब्ध करने में सक्षम है।

सामने हँसकर बोलना और पीठ पीछे बुराई करना पाप है। ***रामानन्द***

किसानों से किसानों तक कृषि तकनीकों का प्रसार : संकल्पना एवं अनुभव

उमा साह, हेम सक्सेना, नरेन्द्र कुमार एवं सुशील कुमार सिंह

उन्नत कृषि तकनीकों व ज्ञान का सामाजिक सम्पर्कों द्वारा अनौपचारिक एवं असंरचनाबद्ध तरीके से किसानों से किसानों तक प्रसार प्रायः सभी कृषक समुदायों में प्रचलित है। किसानों द्वारा किसानों तक कृषि तकनीकों का प्रसार पीढ़ी दर पीढ़ी उपयोग किया गया है। इस अनौपचारिक प्रसार प्रणाली को शोधकर्त्ताओं व विकास कार्यों में संलग्न संस्थाओं द्वारा कृषक समुदायों तक उन्नत कृषि तकनीकों के प्रभावी ढंग से हस्तांतरण करने वाली प्रणाली के रूप में प्रयोग किया गया है। किसानों से किसानों तक प्रसार विधि 1970 के दशक में लैटिन अमरीका में एक सामाजिक आंदोलन के रूप में आरंभ हुई जिसे *''मूविमियेन्टो कैम्पेसिलो ए कैम्पेसिनो''* के नाम से जाना गया। इस आंदोलन के अंतर्गत हजारों कृषक परिवर्तकों ने लैटिन अमरीका के कृषक समुदाय का जीवन स्तर सुधारने एवं उनके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए काम किया। किसानों से किसानों तक प्रसार एक विकेन्द्रीकृत व कृषक भागीदारी प्रसार प्रणाली है जो स्थानीय परिस्थिति एवं जरूरतों के अनुरूप होती है। इस प्रणाली की मूलभूत सोच यह है कि किसान कृषि की नई तकनीकों एवं विधियों के बारे में अपने समुदाय के दूसरे सफल किसानों के अनुभवों से शीघ्र तथा प्रभावी रूप से सीख सकते हैं। साथ ही साथ प्रगतिशील कृषक प्राप्त जानकारी को दूसरे कृषकों तक आसानी से पहुँचा सकता है। ऐसे प्रगतिशील कृषक अन्य कृषकों के बीच प्रभावी संवाद भी स्थापित कर पाते हैं। इस प्रकार जब एक कृषक अपने कृषि तकनीकों के सफल अनुभवों को अपने संपर्क में आने वाले अन्य कृषकों के साथ बाँटने को इच्छुक रहता है तो उस समुदाय के अन्य कृषकों द्वारा उस नई उन्नत तकनीकों के अंगीकरण की संभावना बढ़ जाती है। अपने अध्ययन में घीवल (2001) ने अनुभव किया कि एक सामान्य कृषक दूसरे नवोन्मेषी कृषक के सम्पर्क में आने से अधिक सीख सकता है और इस प्रकार कृषि की नई तकनीकों का उपयोग कर सकता है। किसी भी जटिल व नई जानकारी के प्रसार के लिए कृषक परक कृषि प्रसार एवं महत्वपूर्ण विकल्प हो सकता है।

विश्व के कई देशों में किसानों से किसानों तक कृषि प्रसार पद्धति को विभिन्न प्रसार कार्यक्रमों में अपनाया गया है। इन कार्यक्रमों से प्राप्त अनुभवों का संकलन निम्न रूप से वर्णित है।

(क) पेरू में किसानों से किसानों तक प्रसार : कैमयोग की संकल्पनाः 1990 के दशक के दौरान, पेरू में सरकारी प्रसार तंत्र की सेवाओं में निरन्तर गिरावट को देखते हुए, आ.टी.डी.जी. (एक गैर सरकारी

संस्था) ने कृषक समुदाय के जीवन स्तर में सुधार के लक्ष्य के साथ काम शुरू किया। इस कार्यक्रम का मुख्य बिन्दु था - किसानों से किसानों तक प्रसार करने वाले कर्मियों का प्रशिक्षण। ऐसे प्रसार कर्मी स्थानीय भाषा में *''कैमयोग''* कहलाते थे जिन्हें 1996 में स्थापित 'कैमयोग विद्यालयों'' में कृषि व पशुपालन से जुड़ी उन्नत तकनीकों पर प्रशिक्षण दिया जाता था। ऐसे प्रशिक्षित व्यक्ति अपने समुदाय के अन्य कृषक मित्रों को प्राप्त जानकारी का प्रसार एक निश्चित परिश्रमिक पर करते थे। इस प्रकार शुल्क आधारित किसानों द्वारा किया गया प्रसार सेवा - एक सफल प्रयोग पाया गया। वर्ष 2000 में होलेन व सहकर्मियों ने इन कैमयोग सेवाओं का अध्ययन किया और पाया कि जिन कृषकों ने शुल्क देकर उपलब्ध तकनीकी सलाह एवं परामर्श सेवा का उपयोग किया, उनकी पारिवारिक आमदनी स्तर में, कृषि व पशु उत्पाद की बढ़ोत्तरी की वजह से इजाफा हुआ।

(ख) **नेपाल में छोटे कृषकों के बीच किसानों से किसानों तक प्रसार विधि द्वारा तकनीकी हस्तांतरण :** नेपाल के मध्य पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे किसानों के बीच किसानों से किसानों तक प्रसार विधि के साथ किए गए प्रयोग के मूल्यांकन से पता चला कि ऐसे प्रयास दूरस्थ ग्रामीण इलाकों में बसे कृषकों के लिए एक मूलभूत व नवीन कृषि तकनीकों के प्रसार के लिए एक सुलभ एवं किफायती व्यवस्था हो सकती है। इस विधि द्वारा पहुँचायी गई प्रसार सेवाएँ गरीब व कृषि विकास की मुख्य धारा से अलग-थलग रहे कृषक समुदायों के जीवन स्तर व कृषि उत्पादकता सुधारने में सहयोगी सिद्ध हो सकती है।

(ग) **केन्या में चारा उत्पादन तकनीकों का किसानों से किसानों तक प्रसार कार्यक्रम :** मध्य केन्या में चारा उत्पादन तकनीकों के अंगीकरण पर अध्ययन से पता चला है कि तकनीकी प्रसार की अनौपचारिक प्रसार विधियाँ, खासकर किसानों से किसानों तक प्रसार माध्यम से उन्नत तकनीकों के फैलाव प्रभावी ढंग से संभव हो पाया।

(घ) **उत्तरी नाईजेरिया प्रान्त में उन्नत लोबिया प्रजाति का किसानों द्वारा किसानों तक विधि द्वारा प्रसारः** एक अध्ययन से यह सामने आया कि उन्नत लोबिया की प्रजाति के उत्पादन एवं आर्थिक लाभ क्षमता के प्रभावी दोहन तथा फसल प्रबन्धन तकनीकी सूचना के बेहतर फैलाव के लिए किसानों से किसानों तक प्रसार की विधि एक सशक्त तरीका है।

(ङ) **उन्नत फसल प्रजातियों का किसानों से किसानों तक प्रसार :** अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि छोटे व सीमान्त कृषकों तक नई प्रजातियों का फैलाव, बीज वितरण की संगठित व्यवस्था की तुलना में किसानों से किसानों तक अनौपचारिक प्रसार विधि द्वारा अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। शोध से यह भी तथ्य सामने आया है कि ऐसी स्थितियाँ जहाँ औपचारिक बीज वितरण प्रणाली सक्रिय है वहाँ भी छोटे किसानों के बीच, फसलों की नई प्रजातियों के फैलाव मुख्य रूप से किसानों से किसानों तक की अनौपचारिक पद्धति द्वारा होता है।

भारतीय कृषि परिदृश्य में कृषि प्रसार के लिए किसानों से किसानों तक प्रसार विधि की प्रासंगिकता

वर्तमान कृषि प्रसार व्यवस्था में जिला स्तर पर कृषि तकनीकी प्रबंधन अभिकरण (आत्मा) के गठन के माध्यम से सुधार हुआ है जिससे कृषि प्रसार व्यवस्था कृषक केन्द्रित तथा कृषकों के प्रति जवाबदेह व्यवस्था के रूप में उभरी है। सरकारी व्यवस्था में सुधारों का मुख्य बिन्दु - निर्णय प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण करना, कृषक समूहों को प्रोत्साहन देना, निजी प्रसार संस्थाओं का उत्साहवर्धन तथा सूचना तकनीकों का उपयोग इत्यादि हैं। आत्मा योजना कृषकों एवं कृषक समूहों की सक्रिय भागीदारी, स्वयंसेवी संस्थाओं, कृषि विज्ञान केन्द्रों, पंचायती राज संस्थानों तथा जिला व निचले स्तरीय पणधारकों को कृषि विकास एवं कृषि प्रसार के लिए प्रोत्साहित करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में देश के कुछ प्रांतों जैसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा मध्य-प्रदेश के कृषि विभागों द्वारा पैरा-प्रसार कर्मियों के उपयोग का सफल प्रयोग किया गया। पैरा प्रसार कर्मियों की सफलता का मुख्य कारण उनका कृषक समुदायों के बीच सरकारी प्रसारकर्त्ताओं की तुलना में अधिक पकड़, पहचान तथा विश्वसनीयता है।

देश के कृषि प्रसार व्यवस्था पर एक नजर डालें तो हम पाते हैं कि राज्य कृषि विभाग ही राज्य स्तर पर प्रमुख प्रसार विभाग के रूप में काम करता है। आँकड़े यह भी दर्शाते हैं कि देश के 27 प्रांतों के कृषि विभागों के कुल मिलाकर करीब 36 प्रतिशत पद रिक्त है। ऐसी स्थिति में देश के लगभग 6.39 लाख गाँवों में रहने वाले करीब 1479 लाख किसानों की कृषि प्रसार की वर्तमान व्यवस्था कमजोर दिखती है। कार्यरत प्रसार कर्मियों द्वारा प्रसार के अतिरिक्त, अन्य जिम्मेदारियों का निर्वाहन इस स्थिति को और भी संकट पूर्ण बनाता है। ऐसे में कृषि प्रसार की अनौपचारिक विधि को बल मिलता है क्योंकि साधारण कृषक के पास उनके क्षेत्र में उपलब्ध उन्नत कृषक ही कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त करने का मुख्य स्रोत बन जाते हैं। शोध अध्ययनों से इस बात की पुष्टि भी हुई है कि भारत में ज्यादातर कृषक कृषि की नई जानकारी प्राप्त करने के लिए अन्य उन्नतशील कृषकों या फिर कृषि रसायनों को बेचने वाले दुकानदारों पर निर्भर रहते हैं।

अतः देश की कृषि प्रसार व्यवस्था के उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए, उन्नतशील किसानों को प्रशिक्षित कर-पैरा प्रसार कर्मियों के रूप में उपयोग में लाना एक प्रभावी उपाय के रूप में संस्थागत किया जा सकता है। इसके लिए जिला तथा प्रांतीय स्तर पर उन्नतशील कृषकों का चयन, उनका मार्गदर्शन, तकनीकी सहयोग व प्रशिक्षण प्रदान करवा कर पैरा-प्रसार कर्मियों के रूप में तैयार किया जा सकता है।

उपरोक्त वर्णित परिदृश्य में विभिन्न शोधकर्ताओं व विकास कर्मियों के कार्यक्रमों, अनुभवों व अध्ययनों को ध्यान में रखते हुए किसानों से किसानों तक प्रसार विधि को कृषि तकनीकों के हस्तांतरण में एक महत्वपूर्ण व प्रभावी विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है।

दलहन उत्पादन में गंधक का महत्वपूर्ण योगदान

राम सेवक माथुर, एम.एस. वैंकटेश एवं जगदीश सिंह

भारत में विगत दो या तीन दशकों में खाद्यान्न में आशातीत वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप, हम अनाज में आत्मनिर्भर ही नहीं, बल्कि अनाज का निर्यात भी करने लगे हैं, परंतु दलहन उत्पादन में वृद्धि के बावजूद दाल की उपलब्धता प्रति व्यक्ति निरन्तर घट रही है। शाकाहारी भोजन में अच्छे अमीनों अम्ल के सयोजन वाले प्रोटीन का मुख्य स्रोत एवं भूमि की उर्वरा शक्ति को कायम रखने की गुणवत्ता के कारण दलहनी फसल का उत्पादन बढ़ाना बहुत आवश्यक है। गत कुछ वर्षों में वैज्ञानिक दलहन उत्पादन के कारकों पर शोध करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संतुलित उर्वरकों के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है और गन्धक 20-25 कि.ग्रा./हे. के प्रयोग से अच्छी वृद्धि की जा सकती है। कृषि उत्पादन में पौधों की वृद्धि एवं जीवन चक्र को पूरा करने के लिये 16 पोषक तत्वों में से जो वायु, जल, मृदा से ग्रहण करते हैं। ऑक्सीजन, कार्बन व हाइड्रोजन की आपूर्ति वायु और जल से होती है। शेष तत्वों की आपूर्ति मृदा से होती है और प्रमुख तीन पोषक तत्व, नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश अधिक मात्रा में पौधे अवशोषित करते हैं। कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा गन्धक का अवशोषण प्राथमिक तत्वों की अपेक्षा कम होता है। भारत में फसलों की पैदावार के लिए अधिकांश क्षेत्रों की मृदा, नत्रजन, फास्फोरस का स्तर काफी गिर गया है साथ ही पोटाश की कमी होने के कारण गन्धक का स्तर चौथे पोषक तत्व के रूप में सम्मिलित किया गया है। इसलिए दलहनी और तिलहनी फसलों में गंधक का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि यह पैदावार बढ़ाने के साथ-साथ गुणवत्ता को भी कायम रखता है।

दलहनी फसलों से भरपूर पैदावार लेने के लिए नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश के साथ-साथ पौधों की रचना में मुख्य घटक है और गन्धक पौधों के अंगों में व्यापक रूप से वितरित होता रहता है और साथ ही कार्बनिक, अकार्बनिक दोनों रूप में विद्यमान रहता है, कुछ विशेष अमीनो अम्लों एवं उनके द्वारा प्रोटीन के संगठन में यह प्रयुक्त होता है, सरसों के तेल में जितनें ग्लूकोसाइड होते हैं, उन सभी में गन्धक होता है और पर्णहरित के बनाने में भी सहायक है। कोशिकाओं में होने वाली अपचयन उपचयन में गंधक की महत्वपूर्ण भूमिका है गंधक युक्त अमीनों अम्ल के बिना कोशिका की अनेक आवश्यक प्रोटीन संश्लेषित नहीं हो सकती है, ग्लूटाथयोन तथा थायोटिक अम्ल गैस पदार्थों में गन्धक विद्यमान रहता है।

मिट्टी में गंधक की उपलब्धता

मृदा में यह कार्बनिक व अकार्बनिक (सल्फेट और सल्फाइड) के रूप में मौजूद रहता है किन्तु खेती

योग्य मिट्टी कार्बनिक रूप में पायी जाती है। पौधों की पत्तियाँ गंधक को सल्फाइड के रूप में अवशोषित करती है जो कि पौधों की वृद्धि तथा उपचयन में बहुत योगदान है अनुमान तथा लगभग 18 पी.पी.एम. से 9800 पी.पी.एम. तक गंधक पाया जाता है। कार्बनिक तौर पर गंधक सीधे पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता बल्कि सूक्ष्म जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थ के विघटन से गंधक मिलता है। यही सूक्ष्म जीव अपना भोजन मृदा या कार्बनिक पदार्थ से लेते हैं गंधक का अनुपात 10:1.2/1.5 होता है। अगर कार्बन : गंधक/नत्रजन : गंधक का अनुपात कम हो तो गन्धक खनिजीकरण होगा जिससे उपलब्ध रूप में बदल जायेगा और अनुपात अधिक हो तो अखनिजीकरण के कारण उपलब्ध नहीं हो पायेगा। अकार्बनिक (सल्फेट) का एक भाग मृदा में 1:1 टाइपक्ले जैसे कि ओलिनाइट आयरन तथा एल्युमिनियम के हाइड्राक्साइड पर भी अधिशोषित रहते है इस प्रकार पत्तियों में कम पी.एच. होता है। यदि मृदा में कार्बनिक पदार्थ एल्युमिनियम एवं आयरन की मात्रा का अधिक होने पर भी अधिशोषण अधिक होगा।

पौधों की वृद्धि तथा उपचयन में गंधक के कार्य

1. गंधकयुक्त अमीनो अम्ल जैसे सिस्टीन, सिस्टाइन, मिथियोनिन के संश्लेषण में और प्रोटीन बनाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है, पौधों में कुल गंधक का लगभग 90 प्रतिशत इन्हीं अम्लों में पाया जाता है।
2. कुछ विटामिनों ग्लूटोथिमीन में यह संघटक का कार्य करता है कोएन्जाइम तथा ग्लूटेनिन एक अवयव है जो प्रोटोलाइटिक एन्जाइम को क्रियाशील करता है।
3. दलहनी फसलों में जड़ ग्रन्थियों के बनने में गन्धक सहायक है फलस्वरूप नत्रजन यौगिकीकरण को प्रभावित करता है।
4. पौधों में गंधकरहित लवक (क्लोरोफिल) के निर्माण में सहायक है जो तेल, चीनी, स्टार्च, विटामिन एवं अन्य जीवन उपयोगी तत्व पैदा करता है।
5. इसकी कमी से पौधों में नत्रजन बिना प्रोटीन बदले ही संग्रहित हो जाता है जो जीवधारियों के लिये हानिकारक है।

सल्फेट आयरन (ऋणायन) के रूप गंधक पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित किया जाता है यह बहुत सूक्ष्म मात्रा में यह सल्फर डाइआक्साइड के रूप में पत्तियों द्वारा भी लिया जाता है फास्फोरस के बराबर या थोड़ी कम मात्रा में दलहनी फसलों, मक्का, गेहूँ मौजूद रहता है इसकी कमी से पौधों में नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों से मिलते जुलते पाये जाते हैं।

दलहनी फसलों में गंधक की कमी के कारण दलहन उत्पादन में गंधक की कमी प्रायः स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसकी न्यूनता के बढ़ने के कई कारण हैं। जो निम्न है क्योंकि -

1. प्रत्येक वर्ष फसल की पैदावार के निरन्तर बढ़ते हुए स्तर के कारण खेतों से खेतों के अनुपात से अधिक जल द्वारा गंधक की मात्रा निकल जाती है और फसल को जितनी गंधक दी जाती है उससे अधिक उसकी खपत हो जाती है एवं उत्पादन का पैटर्न पर गंधक रहित उर्वरकों का अधिकार है।
2. गंधक रहित उर्वरकों की ओर झुकाव एक विश्वव्यापी पैटर्न का ही भाग है। भारत में हल्की गठित मिट्टी तथा अतिशय जोती जाने वाली भूमि में यह कमी के प्रति अतिसंवेदनशील होती है।
3. कीटनाशक एवं कवकनाशी के रूप में सल्फर के उपयोग में काफी कमी हो गई है और गंधक के उर्वरकों के प्रयोग में कमी।
4. फसलोत्पादन में भारी वृद्धि
5. जल द्वारा गंधक का अंतः निस्यन्दन

गंधक का पौधों के द्वारा अवशोषण सल्फेट आयरन के रूप में जड़ों द्वारा होता है अतः गंधक सल्फेट आयरन में परिवर्तित होना आवश्यक है यह क्रिया सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीकरण प्रक्रिया से सम्पन्न होती है। छोटे आकार के कणों की वजह से क्षेत्रफल अधिक होने से ऑक्सीकरण शीघ्र हो जाता है। इन्हीं कारणों की वजह से कुछ उर्वरक जैसे तात्विक गंधक, आयरन पाइराइट्स तथा जिप्सम को बुआई से दो या तीन सप्ताह पहले डालना अधिक लाभप्रद है चूंकि गंधक सूक्ष्म मात्रा में पत्तियों द्वारा सल्फर डाई आक्साइड गैस के रूप में अवशोषित होती है और जहाँ औद्योगिक अधिक है वहाँ के वायुमण्डल में गैस अधिक मात्रा में होती है वर्षा होने पर यही तेजाबी बारिश के रूप में पौधों को उपलब्ध हो जाती है। गंधक की कमी नत्रजन के कमी की तरह दिखाई देती है लेकिन गंधक की कमी के प्रारम्भिक लक्षण नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं दलहनी फसलों में जड़ ग्रन्थियाँ कम बनती है कभी फल पकते नहीं अन्त तक हरे बने रहते है। इसकी कमी से पौधे छोटे हो जाते है।

गंधक की कमियों की ज्यादातर सम्भावना

1. हल्की गठित मृदाओं में।
2. उन मृदाओं में जिनमें कार्बनिक पदार्थ कम और जिनमें तेजी से होकर पानी निकल जाता है।
3. जहाँ अधिक (उच्च) पैदावार वाली फसलें उगाई जाती है।
4. गंधक रहित उर्वरक के निरन्तर उपयोग से।
5. उन खेतों में जिनमें दलहनी एवं तिलहनी फसलों की खेती की जाती है।
6. सिंचाई के जल तथा गंधक रहित वायुमण्डल।

सल्फर युक्त उर्वरकों के उपयोग से इसकी कमी सरलता से दूर की जा सकती है।

फसल को गंधक कब और कैसे दी जाए?

किसान को अपने खेत की मिट्टी तथा फसलों को दी जाने वाली गंधक के अनुप्रयोग की दर अपनी स्थानीय प्रसारण सेवा, मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भली-भाँति जाँच करके साधारण रूप से अधिकांश क्षेत्रीय फसलों का 20-25 कि.ग्रा./हे. गंधक प्रति हेक्टेयर की दर से दिया जाना चाहिए। सामान्य परामर्श यह है कि ऐसे उर्वरकों का प्रयोग किया जाय जिसमें आधारीय रूप में सल्फेट-सल्फर पाया जाता हो और खड़ी फसल में सल्फर की कमी को दूर करने के लिये अमोनियम सल्फेट का घोल डालना, अधिकतर क्षेत्रों में अच्छी फसल हेतु सिंगल सुपर फास्फेट तथा जिप्सम के प्रयोग को अच्छी पैदावार के साथ-साथ पौधों को स्वस्थ फली बनाने के लिए गंधक और चूना भरपूर मिल सके। पौधारोपण से 2-4 सप्ताह पूर्व ही इन्हें खेत में डालना चाहिये इतने समय में जब तक पौधों बड़ा होगा तब तक सल्फर मिट्टी में घुल मिल कर पौधों द्वारा अवशोषित होने योग्य रूप में बदल जाता है। अमोनियम सल्फेट का प्रयोग जलमग्न मिट्टी के लिये किया जाना चाहिये, जब कि सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग लघु अवधि वाली फसलों में किया जाना चाहिये। उर्वरकों की संतुलित मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिए केवल ऐसा करने पर ही पूरी उत्पादन क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

वैज्ञानिकों द्वारा किये गये परीक्षणों से पूर्णयता स्पष्ट है कि अधिक क्षेत्रों में 20-50 कि.ग्रा. का प्रयोग करने पर काफी अच्छी उपज की वृद्धि होती है। दलहनी फसलों में उत्पादन खरीफ 15-25 प्रतिशत तथा रबी 25-45 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है, खरीफ में जिप्सम और आयरन पाइराइट और रबी में अमोनियम सल्फेट तथा सिंगल सुपर फास्फेट गंधक के अन्य स्रोतों की तुलना में अधिक प्रभावशाली पाये गये हैं। मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों के आधार पर गंधक के स्रोत का चुनाव करना चाहिए और क्षारीय मृदा के लिये जिप्सम, पाइराइट का प्रयोग अधिक लाभकारी है। जिन क्षेत्रों में सिंगल सुपर फास्फेट का फास्फोरस की आपूर्ति के लिये किया जाता है। उन्हें अलग गंधक देने की आवश्यक नहीं है जबकि सिंगल सुपर फास्फेट से पर्याप्त मात्रा में दलहनी फसलों को गंधक प्राप्त हो जाता है। गंधक उर्वरक का प्रयोग बुआई के दो या तीन सप्ताह पहले करना चाहिये ताकि सल्फेट आयरन में बदल जाये गंधक जिससे पौधा आसानी से ग्रहण कर लें भरपूर उपज के लिए गंधक का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

विभिन्न उर्वरकों में गंधक की मात्रा :- अमोनियम सल्फेट (24%), अमोनियम फास्फेट सल्फेट (15%), अमोनियम फास्फेट नाइट्राइड (15%), सिंगल सुपर फास्फेट (12%), पोटेशियम सल्फेट (18%), पोटेशियम मैगनीशियम सल्फेट (16-22%), तात्विक सल्फर (85-100%), जिप्सम (13-20%), जिंक सल्फेट (15%) और आयरन पाइराइट्स (22-24%)।

मृदा में उपलब्ध गंध की निर्णायक सीमा एवं उर्वरकों की संस्तुति (मृदा परीक्षण के आधार)

गंधक की निर्णायक सीमा मि.ग्रा./कि.ग्रा. मृदा	गंधक की उर्वरता का वर्ग	उपज में बढ़ोतरी (प्रतिशत)	गंधक की कमी का वर्ग	गंधक की मात्रा कि.ग्रा./हे. आवश्यकतानुसार	
				दलहनी	तिलहनी
< 5	बहुत कम	25-85	बहुत अधिक	40	60
6 - 10	कम	20-85	बहुत अधिक	30	45
11-15	मध्यम	5-20	मध्यम	20	30
16-20	अधिक	1-5	कम	10	15
20	बहुत अधिक	0	बहुत कम	0	0

स्रोतः- भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

आलस्य की कब्र में सभी सदगुण दफन हो जाते हैं। ***इन्दिरा गाँधी***

मूँग और उर्द के हानिकारक कीट एवं उनका प्रबन्धन

डा. (श्रीमती) हेम सक्सेना

मूँग और उर्द को 271 हानिकारक कीट और 9 अष्टपदी (माइट) विभिन्न अवस्थाओं में हानि पहुंचाते हैं। जैसे जड़, अंकुर और पत्तियों को खाकर, कलियों, फूलों और फलियों का रस चूस कर और भण्डारण में।

विश्व के मूँग और उर्द का 28.6 प्रतिशत उत्पादन भारत में होता है जबकि 37 प्रतिशत क्षेत्रफल है। भारत में मूँग और उर्द की फसलें बसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में बोयी जाती हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा के अनुसार मूँग और उर्द की बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में बुआई 15 फरवरी से 15 अप्रैल और कटाई 15 जून तक मानसून के आने पर करते हैं। इस समय वही हानिकारक कीट मिलते हैं जो कि गर्म और शुष्क मौसम को सहन कर सकते हैं। फसल की शुरूआत में अंकुर को तना मक्खी हानि पहुँचाती हैं। फसल को बढ़ने की अवस्था में पत्ती खाने वाले कीट जैसे गेलरूसिड बीटल, रोएंदार सूड़ी, बहुत मिलते हैं। थ्रिप्स कलियां बनने की अवस्था से हानि पहुंचाना शुरू करते हैं और जब फूल पूरी तरह निकल आते हैं तो भयंकर प्रकोप करते हैं जिससे फूल गिर जाते हैं। इसके बाद फली भेदक फूलों और हरी फलियों को हानि पहुंचाते हैं। वर्षा शुरू होने के बाद वर्षाकालीन फसल की बुआई शुरू हो जाती है। अधिकांश क्षेत्र में बुआई जुलाई में और कटाई अक्टूबर के अन्त में होती है। सितम्बर में वर्षाकालीन फसल की वानस्पतिक बढ़वार हो जाती है। इसी समय महत्वपूर्ण हानिकारक कीट मिलते हैं जैसे पत्ती खाने वाले, फूल खाने वाले और फलियां खाने वाले।

मूँग और उर्द को हानि पहुंचाने वाले कीटों का समूह

मूँग और उर्द को बहुत सारे हानिकारक कीट हानि पहुंचाते हैं। जिनकों निम्नलिखित श्रेणी में बाँटा जा सकता है :

1. जड़ों को खाने वाले
2. रस चूसने वाले
3. पत्तियाँ खाने वाले
4. फलियों को खाने वाले।

हानिकारक कीट

1. जड़ और अंकुर में लगने वाले हानिकारक कीट

गेलरूसिड बीटल के ग्रब जड़ के बालों और जड़ की ग्रन्थियों में घुस कर खाते हैं और 10 से 15 प्रतिशत तक मूँग के पौधों को और 5 से 8 प्रतिशत उर्द के पौधों को हानि पहुंचाते हैं। भारत में अंकुरण की अवस्था में तना मक्खी मूँग और उर्द में बहुत अधिक प्रकोप करती है।

उड़ीसा में कटुआ का अत्यधिक प्रकोप होता है जबकि देश के अन्य भागों में यह एक अमहत्वपूर्ण कीट है। यह रात को तना और टहनियों को जमीन के पास से काट देता है और कुछ दूर जमीन में घसीट कर मिट्टी में दबा देता है।

2. वानस्पतिक अवस्था के हानिकारक कीट

(अ) पत्तियाँ खाने वाले हानिकारक कीट

इस अवस्था में मूँग और उर्द को सबसे अधिक हानि पत्ती खाने वाले हानिकारक कीटों से होती है। ये पत्तियों को ही नहीं खाते, वरन फूल और फलियों को भी खाते हैं। इससे होने वाली आर्थिक क्षति का अनुमान लगाना आसान नहीं है क्योंकि पत्ती, फूल और फलियां तो फिर से निकल आयेंगी लेकिन प्रकाश संश्लेषण से बनने वाले पदार्थों की कितनी हानि हुई है यह पता लगाना बहुत मुश्किल है। फसल की उपज में कमी तो बहुत सारे कारणों पर निर्भर करती है। जैसे पत्तियां कब कितनी और किस अवस्था में फसल से खायी गयी हैं।

बहुत सारे लैपीडोटेरा वर्ग की सूड़ी मूँग और उर्द की पत्तियों को हानि पहुंचाती हैं। राजस्थान एवं बिहार में रोंयेदार सूड़ी का अत्यधिक प्रकोप हुआ था और बहुत अधिक आर्थिक क्षति हुयी थी।

(ब) फूल पत्तियों और कलियों को खाने वाले कीट

हानिकारक कीट और अष्टपदी कोमल पत्तियों, फूल, कली और फलियों से रस चूसतें रहते हैं। इनके प्रकोप से बहुधा फूल झड़ जाते हैं और बीज घटिया किस्म के बनते हैं। रस चूसने वाले कीड़ों का प्रकोप ग्रीष्म और बसन्त ऋतु वाली फसल में हमेशा फूल व फलियां बनने वाली अवस्था में होता है। यह समय मई से मध्य जून की अवधि का होता है या फिर वर्षा ऋतु का जिसमें मूँग और उर्द की पैदावार में बहुत नुकसान होता है। यद्यपि वर्षा ऋतु वाली फसल रस चूसने वाले कीड़े के प्रकोप को सहन कर लेती हैं क्योंकि उस समय पौधों में ज्यादा ताकत और पत्तियों की कमी को पूरा करने की अधिक क्षमता होती है।

उर्द और मूँग को थ्रिप्स बहुत हानि पहुंचाते है। *कैलियोंथ्रिप्स इन्डिकस* और *मैगालूरा थ्रिप्स ड्रिस. टेलिस* मूँग की कोमल कलियों और फूल को पंजाब, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में बहुत हानि पहुचांते हैं। पंजाब

में ग्रीष्म मूँग में थ्रिप्स का बहुत प्रकोप पाया जाता है तथा यदि 19 थ्रिप्स 25 फूलों में पाये जाते हैं तो 82.4 प्रतिशत फूल गिर जाते हैं।

बहुभक्षी श्वेत मक्खी जो चूसक कीट है। मूँग को परोक्ष और अपरोक्ष रूप से बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। यह पत्तियों से रस चूसते समय पीला चितेरी रोग के विषाणु का संचारण भी करती है। श्वेत मक्खी की मादा नर से आकार में बड़ी होती हैं तथा विषाणु संचारण में नर से अधिक दक्ष होती हैं। यह रोगी पौधे पर 10 मिनट के चूसक में विषाणु को अर्जित कर लेती हैं और जब एक स्वस्थ पौधें पर चूसण करती हैं तो साथ में विषाणु का स्वस्थ पौधे में संचारण भी करती है। यह प्रक्रिया पूरे खेत में चलती रहती है। रोग फैलता रहता है मूँग का पीला चितेरी रोग का विषाणु नर और मादा मक्खी में 10 तथा 5 दिन तक सक्रिय रूप में रह सकता है। यह रोगवाहक मक्खी पूरे वर्ष किसी न किसी पौधे पर पायी जाती है। गर्मियों में श्वेत मक्खी अरहर से पीला चितेरी विषाणु गृहण कर के ग्रीष्मकालीन मूँग और उर्द में संचारण करती हैं। ग्रीष्मकालीन मूँग व उर्द के रोगी पौधे वर्षाकालीन खरीफ मूँग और उर्द की फसलों के लिये विषाणु के निवेश द्रव्य के स्रोत का कार्य करते हैं। इस भाँति मूँग का पीला चितेरी विषाणु एक मौसम से दूसरे मौसम तक जीवित रह कर एक फसल से दूसरी फसल में रोग फैलता रहता है। रोग फैलने की गति श्वेत मक्खी की संख्या पर निर्भर करती है।

एकिस क्रासीवोरा हरापन लिये हुए काला मांहू उर्द और मूँग को उत्तर प्रदेश, पंजाब और उड़ीसा में बहुत हानि पहुंचाता है। इसका जीवन चक्र उदर में 10.34 ± 4.11 दिन जबकि मूंग में 12.47 ± 3.09 में पूरा होता है।

लीफ हॉपर की तीन प्रजातियाँ *इम्पोस्का कैरी, इम्पोस्का मोती* और *इम्पोस्का दरमिनैलिम* मूँग और उर्द को हरियाणा, दिल्ली और पंजाब में हानि पहुँचाती है।

भारत में *रिपटोरटस* बग की 4 प्रजातियाँ मूँग और उर्द को हानि पहुंचाती हैं। *कैवीग्रला गिब्बोसा* मूँग को भारत में बहुत अधिक हानि पहुँचाता है। *चौलिप्स कैलेक्स* पत्तियों, फूल और कलियों को मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में बहुत अधिक हानि पहुंचाता है। *नेजारा विरिडुला* मूँग की कोमल फलियों को मध्य प्रदेश में हानि पहुंचाता है। यह मूँग का बहुत अधिक हानिकारक कीट है। जोकि फलियों और दानों को हानि पहुंचाता है। जिस समय रस चूसता है उसमें बहुत अधिक विषैली लार को डाल देता है जिसमें फलियां दाने नहीं बना पाती है या दाने सिकुड़ जाते हैं जहां पर यह रस चूसता है वहां पर जल जाता है। गर्मियों में मूँग और उर्द के फूल झड़ने और फलियां सूखने का यह प्रमुख कारण है।

पेन्टैटोमिड बग-पाइजोडोरस हाईबनेरी मूँग को हानि पहुंचाते हैं। यह अधिकतर बनती हुई फलियों से रस चूसते हैं जिसमें फलियां और दाने सिकुड़ जाते हैं। फलियां टेढ़ी-मेढ़ी और आकार में छोटी हो जाती हैं।

चेचन्डी (अष्टपदी) मूँग में बहुत पाये जाते हैं और फसल को पत्तियों से रस चूस कर हानि पहुंचाते हैं। हिसार में इसका बहुत अधिक प्रकोप पाया जाता है। तमिलनाडु तथा आन्ध्र प्रदेश में *टेट्रानाइकसा* प्रजाति मूँग में पत्तियों और कलियों में बहुत अधिक हानि पहुंचाती है। जबकि पॉली कैगो ठेरसोनीमस नामक प्रजाति मूँग को लुधियाना में हानि पहुंचाती हैं।

(स) कली, फूल और फलियों को हानि पहुंचाने वाले कीट

पंतनगर में ब्लिस्टर बीटल मूँग के फूलों को, जब कि पंजाब में मूँग और उर्द के ऐन्थर्स को खाती हैं। दिल्ली में उर्द के फूलों को *म. फालेराटा* खाती है।

ब्रुकिड बीटल की तीन प्रजातियां काइलो ब्रुकस एस.पी. मूँग और उर्द की फलियों और दानों को खेत में भी हानि पहुंचाती हैं।

उत्तर प्रदेश एवं तमिलनाडु में मूँग की फलियों को *यूक्राईसोप्स* एस.सी. की सूड़ी हानि पहुंचाती है। *लैपडिस* एस.वी. की सूड़ी भी मूँग और उर्द की फलियों को हानि पहुंचाती है। उत्तर प्रदेश में मूँग के फूल और फलियों को *एवज़लेटिस आटोमोरा* की सूड़ी भी हानि पहुंचाती हैं। भारत में मूँग के फूल झड़ने और गिरने का मुख्य कारण मारुका टेस्टुलस की सूड़ी होती है। चना फली छेदक *हेलिकोवरपा आर्मीजेरा* की सूड़ी भी कली, फूल परागण या अविकसित कलियों को अत्यधिक हानि पहुंचाती हैं।

कीट प्रबन्धन

साधारणतया दलहनी फसलें बेकार और परती भूमि में बोयी जाती है। किसान मुख्यतया गेहूँ और धान को ज्यादा महत्व देते हैं। मूँग और उर्द को छोटे खेतों में विभिन्न फसल-चक्र में बोते हैं। इस तरह बहुत अधिक संख्या में हानिकारक कीट खासतौर पर इन्हीं फसलों को हानि पहुँचाते हैं। इसके अलावा मूँग और उर्द विभिन्न हानिकारक कीटों के पोषित के रूप काम करती हैं जो उस क्षेत्र में भिन्न-भिन्न फसलों पर पाये जाते हैं। भारत में मूँग और उर्द पूरे वर्ष बोयी जाती है। जिससे हानिकारक कीड़ों के खाने के लिये बराबर फसल उपलब्ध रहती हैं।

सफलतापूर्वक मूँग और उर्द का उत्पादन लेने के लिये प्रभावी कीट प्रबन्धन अत्यन्त आवश्यक हैं जिसमें पत्ती खाने वाले, चूसने वाले, और फलियां खाने वाले हानिकारक कीटों को नियंत्रित किया जा सके। सिर्फ कीटनाशी रसायनों पर निर्भर रहने से काम नहीं चलेगा क्योंकि विकासशील देशों में जहां ये फसलें बोयी जाती है किसान मुश्किल से 10-15 प्रतिशत फसल सुरक्षा के उपाय अपनाते हैं। जबकि सिर्फ कीट रसायनों के उपयोग से बहुत सी समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। इसलिये सब विधियों को मिलाकर कीट प्रबन्धन करना चाहिए।

1. सस्य नियंत्रण

सस्य नियंत्रण में साफ सुथरी फसल, टिकाऊ फसल-चक्र, टैप फसल का उपयोग समय से बुआई और कटाई, फसल अवशेष का निराकरण, जल प्रबन्धन इत्यादि। इन सब उपाय में लागत तो कुछ भारी नहीं लगती हैं लेकिन लाभ बहुत अधिक होता है। इन सब उपायों से बहुत सारे हानिकारक कीट नष्ट हो जाते हैं।

गेलरूसिड बीटल और जैसिड को बुआई की तारीख नियंत्रित करके मूँग में इनके प्रकोप को रोक सकते हैं। मूँग के साथ ज्वार और बाजरा की अतः फसल लगाकर जैसिड और दूसरे कीड़ों को नियंत्रित कर सकते हैं।

इसी तरह उर्द को अरहर के साथ अन्तःफसल बोकर हरा जैसिड और हरा बग को नियंत्रित कर लेते हैं। मूँग की समय से बुवाई कर लें तो बहुत हानिकारक कीड़े कम या बिल्कुल ही नहीं लगते हैं।

पोटाश का 50 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेअर प्रयोग करने से फली भेदक का प्रकोप कम हो जाता है और पैदावार 36 प्रतिशत बढ़ जाती है। उर्द के साथ कुसुम, अरहर, मूँग, ज्वार की अन्तःफसल लेने से उर्द पर लगने वाले हानिकारक कीड़ों पर प्रभाव पड़ता है। यह अनुसंधानों से विदित हैं कि जैसिड की जनसंख्या उर्द ज्वार और उर्द कुसुम की अन्तः फसल लेने से कम हो जाती है। जबकि मूँग और अरहर की अन्तः फसल लेने से जैसिड की संख्या बढ़ जाती है।

इसी तरह उर्द की अन्तः फसल जवार और अरहर के साथ लेने से सेमीलूपर देर से आता है। उर्द की ज्वार के साथ अन्त फसल लेने से फली भेदक के प्रकोप में महत्वपूर्ण कमी होती है।

अण्डों और सूड़ी के समूह को इकट्ठा करके नष्ट कर देने से, बिहार रोयदार सूड़ी, और भूरा बग को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। अच्छी तरह खेत तैयार करने से टिड्डी और कटुआ नियंत्रित हो जाते हैं।

अवरोधी प्रजातियां

अवरोधी प्रजातियों का महत्व कीट प्रबन्धन में फसल पर लगने वाले हानिकारक कीटों और उस क्षेत्र के एग्रोइकोसिस्टम पर निर्भर करता है। इसका महत्व कीट प्रबन्धन में दूसरे अवयव की उपलब्धता और उपयोगिता पर भी निर्भर करता है। अतः अवरोधी प्रजातियां एक अवयव के रूप में कीट प्रबन्धन में कार्य करती है।

दो प्रजातियां मेहा और सम्राट मूँग के पीला चितेरी रोग के साथ-साथ फली मक्खी के विरूद्ध भी अवरोधी पाया गया है।

उर्द की उत्तरा और नरेन्द्र उर्द-1 को पीला चितेरी रोग के विरूद्ध अवरोधी पाया है।

जैविक नियंत्रण

कुल 123 प्राकृतिक शत्रु विभिन्न हानिकारक कीटों जैसे श्वेत मक्खी, जैसिड, मांहू, स्ट्रिंग बग, हरा बग, बीन मक्खी लाल रोयदार सूड़ी, बिहार रोयदार सूड़ी, फलीभेद और घुन पर मिलते हैं। जिनमें से 88 परजीवी, 28 परभक्षी और 7 व्याधिजन है।

बिमिसिया टेबकाई

निम्फ एवं कोषक के परजीवी *इरेटोमोसेरस मेसाई, प्रोसपाटेला फ्लेवा* एवं *जिओकोसि ट्राईकलर* और *परभक्षी ब्रुमस एस.पी. क्राइसोपा एस.वी. क्राइसोवा सिमबेला* और साइबोसेफालम एस.पी. पाये जाते है। जबकि वयस्क मक्खी की मृत्यु एन.पी.वी. और फफूंदी *पेसिलोमाइसेज फारीनोसस* द्वारा भी होती है।

इम्फेस्का कैरी प्रुथी के निम्फ पर पाँच परभक्षी पाये जाते हैं जैसे क्राईसोपा सिमबेला, कैम्पोनोटस एम. वी. *एकैन्योलेबिस सिम्पलेक्स* और काकसिनेला सेप्टमपक्आ जबकि *डिस्टिना एलबिडा* वयस्क और निम्फ दोनों का परभक्षी कीट है।

ऐफिस क्रासीवोरा

वयस्क और निम्फ पर 15 परभक्षी कीट पाये जाते हैं जैसे *ब्रुमस स्टुरालिस, काइलोकोरस नाइगरिटस, काकसिनेला,* एस.पी. इत्यादि। वयस्क और निम्फ पर तीन परजीवी भी मिलते हैं जैसे प्राउन एस.वी. *डाइनेटटिलया रैवी* और *थ्राआक्सी इंडिक्स*।

मैलेनाएग्रोमाइजा सोज़े

दो सूड़ी और कोषक परजीवी - जैसे *एक्रोसटिलबा* और *ओबिअस आलरसई* मूँग में मिलते हैं।

एमसेक्टा मोराई

चार परजीवी, 1 परभक्षी और एन.पी.वी. सूड़ी पर मिलता है।

चना फली भेदक

हेलिकोवरपा आर्मीजेरा सूड़ी पर 27 परजीवी और 1 परभक्षी मूँग पर पाया जाता है।

मारूका टेस्टलिस

सूड़ी पर पाँच परजीवी *ब्राउसिया,* एस.पी. *फौनरोटोमा* एस.वी. *सीडोपैरीचाटा लेबिया, टेट्रास्टिकस थेलारिओसोमा पलपोसम* और चार अण्डे और सूड़ी पर परभक्षी मिलते हैं।

बिहार रोयदार सूड़ी यानी स्पाइलोसोमा आब्लीकुआ –

इसकी सूड़ी पर 9 परजीवी मिलते हैं। जैसे *एपैनटेलिस क्रिटोनोटी, ए. क्लेवीपसा, ए. अब्लीकुआ, ए. जायानागोरेनसिस, ए. एल्टर, ए. रूडस, ए. विट्रीवेनिस, चारोपस, एस.वी.* और *ड्राइनों एस.पी.*। जबकि अण्डे पर 2 परजीवी मिलते हैं जैसे *ट्राइकोग्राम किलोनिस* और *ट्राइकोग्राम माइनुरम*।

इस्पोडोआपटरा लिटुरा

सूड़ी परजीवी *ब्रेकान हेबेटर,* अण्डे और सूड़ी का परजीवी *चीलीनस ब्लैकबरनी* और कोषक का परजीवी *ट्रैटरारिटकरस इजरायली* मिलता है। सूड़ी पर एन.पी.वी. भी मिला है।

कैलोसोब्रुकस एस.वी.

इसमें अण्डे पर *चीटोरट्राचा मुक्खर्जी* और सूड़ी पर *ब्रुकीबिएस लैक्टीसेप्स* मिलता है।

रसायनिक नियंत्रण

कीट रसायनों का प्रयोग भिन्न-भिन्न कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों में अलग-अलग होता है क्योंकि वहां पर पाये जाने वाले हानिकारक कीड़े भिन्न होते हैं। यह नियंत्रण तुरन्त एवं प्रभावी होती हैं इसलिये अधिकतर किसान को बहुत पसन्द आता है। दूसरे नियंत्रण के मुकाबले में यह नियंत्रण भरोसेमन्द और वास्तविकता के साथ होता है। इसलिये इस पर निर्भर कर सकते हैं। मूँग और उर्द की पैदावार में भी बढ़ोत्तरी के प्रभाव मिल जाते हैं। चूंकि मूँग और उर्द के हानिकारक कीड़े एक समान होते हैं। इसलिये कीट रसायन नियंत्रण दोनों फसल के लिये एक सा होता है।

1. **जड़ और अंकुर की अवस्था में लगने वाले हानिकारक कीड़ों का रासायनिक नियंत्रण :** भारत में अंकुरण की अवस्था में मूँग और उर्द को तना मक्खी बहुत अधिक हानि पहुंचाती हैं। दानेदार कीट रसायनों के भूमि में प्रयोग जैसे एल्डीकार्ब, कार्बोफ्यूरॉन, डाइसुलफोटान और फोरेट के 1.0 कि.ग्रा., 1.5 कि.ग्रा. और 2.0 कि.ग्रा. के साथ-साथ, बीजों को भी 2 से 4 ग्राम कार्बोफ्यूरान प्रति 1000 ग्राम बीज उपचारित कर लेते हैं तो तना मक्खी का प्रभावशाली नियंत्रण हो जाता है और उपज भी बढ़ जाती है।

२. वानस्पतिक अवस्था में लगने वाले हानिकारक कीड़ों का कीट रसायनिक नियंत्रण

अ. पत्तियों पर खाने वाले :

भूमि में 1.0-1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टयर बुआई के समय डालने से गुलरूसिड बीटल, श्वेत मक्खी, और जैसिड का मूँग और उर्द में प्रभावशाली नियंत्रण हो जाता है। इसी प्रकार मूँग में बीच का उपचार

2 प्रतिशत कार्बोफूरॉन या 3 ग्राम इमिडाक्लोरपिड प्रति कि.ग्रा. बीज के बाद फोरेट के दाने 1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर गेलुसरिड बीटल के विरूद्ध बहुत अधिक प्रभावशाली पाया गया है। कलोरपाएरीफॉस, डाएमीथोएट, मोनोक्रोटोफॉस का छिड़काव *एम. एब्सकुरेला* की हानि को कम कर देती है।

बुआई के 6-8 हफ्ते के बाद का छिड़काव बीटल और सेमीलूपर को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर लेता है। फेनवेलरेट की धूल और इमलसन फारमुलेशन मूँग और उर्द में *एस. ब्लीकुआ* को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर लेता है।

चना फली भेदक को मूँग पर फेनवेलरेट, मानोक्रोटोफॉस, क्यूनालफॉन और फामेलोन को अकेले और साथ में प्रयोग से प्रभावशाली नियंत्रण पाया है। फोरेट 10 जी, मेफोसोलान 5 जी, डिसुलफोआन 5 जी, कार्बोफूॅरान 3 जी और एल्डीकार्ब 10 जी को 2 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टर बुआई के समय प्रयोग से पत्तियों पर खाने वाली सूड़ियों की संख्या बहुत कम हो जाती है। *एपिआन कोलारिस* को क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत, सेविथिआन 4 प्रतिशत, कार्बोरिल 5 प्रतिशत या 10 प्रतिशत, बी.एस.सी. 10 प्रतिशत और पाराथिआन 2 प्रतिशत धूल प्रभावशाली नियंत्रण कर लेती है।

ब. चूसने वाले

श्वेत मक्खी का प्रभावशाली नियंत्रण दानेदार कीट रसायन एल्डीकार्ब 10 जी, डाईसुलफ्कोटान 5 जी, फोरेट 10 जी को 2 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर और दो छिड़काव मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत से प्राप्त हो जाती है और वाई.एम.वी. का भी प्रकोप कम होता है।

इसी प्रकार मोनोक्रोटोफॉस, फेनीट्रोथियॉन, क्लोरफौनीफॉस, मैलाथियॉन, फासालोन, वैमीडोथियॉन, डाएमिथियोएट के 0.075 प्रतिशत, 0.06 प्रतिशत, 0.05 प्रतिशत, 0.04 प्रतिशत और 0.03 प्रतिशत छिड़काव जैसिड का प्रभावशाली नियंत्रण करते है। गैलसिरॉन और डाएमिथोएट अष्टपदी, *पॉलीफैगोटारसोनेमस लैटस* को सफलतापूर्वक नियंत्रण कर लेते हैं।

ग्रीष्मकालीन मूँग में थ्रिप्स के प्रभावशली नियंत्रण के लिये सिस्टेमेटिक कीट रसायन जैसे डाएमिथोएट, ट्राईजोकॉस और इमिडाक्लोरपिड का छिड़काव प्रभावशाली नियंत्रण देता है।

3. फूल और फलियों को खाने वाले कीड़ों का रसायनिक नियंत्रण

मूँग के फली छेदक मरूका टेस्टुलिस, हेलिकोवरपा आर्मीजेरा को फेनवेलरेट, मोनोक्रोटोफॉस, क्यूनालफॉस और फोसॉलान अकेले या मिराकुलान के साथ छिड़काव करने पर प्रभावशाली नियंत्रण हो जाता है। मूँग में फूल लगने शुरू होने पर का छिड़काव करने पर फली छेदक का प्रभावशाली नियंत्रण हो जाता है।

नेटवर्किंग का महत्व

आदित्य प्रकाश एवं देवराज

नेटवर्किंग शब्द नेट से बना है जिसका अर्थ दो या दो से अधिक चीजों को जोड़ना है। कम्प्यूटर के संदर्भ में नेटवर्किंग का मतलब है दो या दो से अधिक कम्प्यूटरों को एक कंपनी, एक शहर, एक देश के विभिन्न स्थानों को आपस में जोड़ना व उनके स्थानों को एक्सेस करना तथा विश्व के किसी भी कोने में स्थित कम्प्यूटर को आपस में जोड़ना है। इण्टरनेट, मोबाइल कम्युनिकेशन, सैटेलाइट आदि नेटवर्किंग का ही परिणाम है। लोकल एरिया नेटवर्किंग को लैन के नाम से जाना जाता है। इस तरह की नेटवर्किंग की मद्द से किसी एक इमारत में रखे कम्प्यूटरों का आपस में जोड़ा जाता है। इसके अन्तर्गत जोड़े जाने वाले कम्प्यूटरों के बीच की दूरी 100 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि इस तरह की नेटवर्किंग में कम्प्यूटरों को केबल द्वारा एक दूसरे से जोड़ा जाता है। अधिक दूरी होने पर डाटा की क्षति हो जाने की आशंका रहती है। मेट्रोपोलिटन एरिया नेटवर्किंग को मैन के नाम से जाना जाता है। इसमें वायरलेस तथा वायर दोनों तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस तरह की नेटवर्किंग में एक शहर के अलग-अलग क्षेत्रों में स्थित विभिन्न इमारतों या कंपनियों में रखे कम्प्यूटरों को आपस में जोड़ा जाता है। वाइड एरिया नेटवर्क को वैन के नाम से जाना जाता है। इस नेटवर्क के अन्तर्गत अलग-अलग शहरों या देशों में कार्यरत कम्प्यूटरों को जोड़ा जाता है। इसमें भौगोलिक दूरी कोई महत्व नहीं रखती है क्योंकि यह पूर्णतया वायरलेस टेक्नोलॉजी पर आधारित होता है। स्टोरेज एरिया नेटवर्क (सैन) का उपयोग प्रायः बड़ी कंपनियों तथा इन्टरनेट सेवा प्रदान करने वाली कंपनियों द्वारा किया जाता है। इसके अन्तर्गत एक सर्वर तथा स्टोरेज डिवाइसों को अनेक सर्वरों और स्टोरेज डिवाइसों से सीधे जोड़ा जाता है। सूचना तकनीक क्रांति के इस दौर में नेटवर्किंग बहुत आवश्यक है। कंपनियों का अधिकांश कार्य नेटवर्किंग द्वारा ही संचालित हो रहा है।

रिसोर्स शेयरिंग की सहायता से उपकरणों तथा सर्विसेस के उपयोग को कम करके किसी एक या दो कम्प्यूटरों के साथ जोड़ दिया जाता है। इससे हर कम्प्यूटर के लिए अलग-अलग उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती है और कंपनियों के खर्चों में काफी बचत होती है। इन्फारमेशन शेयरिंग की मद्द से किसी एक कम्प्यूटर और उसके डाटा को दुनिया के दूसरे कोने में रखे कम्प्यूटर की सहायता से आदान-प्रदान किया जा सकता है। इसकी मदद से हम वाइस (बोलती हुई) फोटो, लाइव टेलिकास्ट आदि भी शेयर कर सकते हैं।

मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही एक दिन बन जाता है। ***स्वामी विवेकानन्द***

दालों का महत्व

विजय लक्ष्मी

'पल्स' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा या प्राचीन यूनानी भाषा से हुई है।

पुरातत्वविदों द्वारा लगभग 3300 वर्ष ईसा पूर्व रावी नदी (पंजाब) व सिंधु घाटी सभ्यता के आस-पास दालों के अस्तित्व को पाया गया है। मसूर दाल की खेती के साक्ष्य भी मिस्र के पिरामिड में पाये गये हैं और सूखी मटर के बीज पाषाण काल में स्विल के एक गांव में पाये गये हैं। पुरातात्विक साक्ष्य यह सिद्ध करता है कि मटर 11वीं सदी या उससे करीब 5000 साल पूर्व पूर्वी भूमध्य और मेसोपोटामिया क्षेत्रों और ब्रिटेन में पाया गया है।

भारत दुनिया में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक राष्ट्र है और उपभोक्ता देश हैं पाकिस्तान, कनाडा म्यांमार, आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका।

दालों में प्रोटीन, जटिल कार्बोहाइड्रेट और कई विटामिन और खनिज पदार्थ पाये जाते है। इनमें कम वसा या सोडियम तथा कोलेस्ट्राल नहीं पाया जाता है। दालों में स्वास्थ्य के लिए उपयोगी लोहा, मैग्नीशियम, फास्फोरस और जिंक पाया जाता है।

दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा 20-25% पाई जाती है जो कि गेहूँ की दो गुनी व चावल की तीन गुनी होती है। दाल की उच्च मानक प्रोटीन उसकी पाचन शक्ति को बढ़ाता है। इसमें मीथिओनिन नामक आवश्यक अमीनो अम्ल पाया जाता है। दलहन शाकाहारियों के लिए एक महत्वपूर्ण आहार है।

अनाजों में प्रोटीन (%) की मात्रा

1.	सोयाबीन	- 43.2	2.	मसूर	- 25.1
3.	मूँग दाल	- 24.5	4.	लोबिया	- 24.1
5.	साबुत मूँग	- 24.0	6.	उड़द काली	- 24.0
7.	मोथ	- 23.6	8.	राजमा	- 22.9
9.	चना (भुना)	- 22.5	10.	कुल्थी	- 22.0
11.	चना दाल	- 20.8	12.	मटर (सूखी)	- 19.7
13.	चना	- 17.1	14.	गेहूँ	- 11.8
15.	बाजरा	- 11.6	16.	मक्का	- 11.1
17.	मैदा	- 11.0			

यह शरीर के पोषक तत्वों को प्रचुर मात्रा में पूर्ण कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। दालों के अत्यधिक सेवन से दिल की बीमारी नहीं होती है। दालों में एमाइलेज तथा प्रतिरोधी स्टार्च भी पाया जाता है।

मधुमेह आहारः मधुमेह से ग्रसित रोगियों को मसूर, मटर, व सेम का सेवन करना चाहिये। यह रक्त शर्करा के नियंत्रण के प्रबंधन में सहायक होती है। कुछ अन्य कार्बोहाइड्रेट स्रोतों की तुलना में, दालों में गलासिमिक कम मात्रा में पाया जाता है। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि दालों के उपयोग के बाद रक्त शर्करा के स्तर में स्थिरता पाई गई है।

वजन प्रबंधन आहारः दालें वजन के प्रबंधन में लाभकारी सिद्ध हुई हैं। दालों में फाइबर, उच्च कोटि के प्रोटीन तथा वसा वजन घटाने में सहयोग प्रदान करते हैं। पकी हुई दाल या एक कप सूखी मटर वयस्कों द्वारा ली जा सकती है। जो कि उच्चस्तरीय खाद्य पदार्थ है और आहार में पूर्णता प्रदान करता है।

मानव जीवन पर अन्न का प्रभाव

राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव एवं देशराज

हम जो अन्न खाते हैं वह हमारे मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है। अन्न खाने का अर्थ अन्न के नाम से नहीं अपितु उसको प्राप्त करने के तरीके से है। जैसे अगर कोई व्यक्ति चोरी किया अन्न खाता है तो उसके विचारों में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है व अगर कोई व्यक्ति मेहनत से प्राप्त किया अन्न खाता है तो वह अन्न उसे सत्कर्मों के प्रति प्रेरित करता है। इसका उदाहरण है कि एक बार चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के सामने हताशाजनक विचार प्रस्तुत किये। चाणक्य चकित रह गये कि उत्साही चन्द्रगुप्त के अन्दर अचानक निरूत्साह का बीज कहाँ से उत्पन्न हो गया। अगले दिन फिर चाणक्य चन्द्रगुप्त से मिले और पूछा चन्द्रगुप्त तुम्हारे कल के विचारों में जो निरूत्साह प्रकट हुआ उसका क्या कारण है। चन्द्रगुप्त शर्मिन्दा होते हुये बोले गुरुवर कल शक्ति एकत्रीकरण भ्रमण के दौरान मैंने एक सेठ के यहाँ भोजन किया था वह भोजन मजदूरों के शोषण से एकत्र हुआ था। अतः गुरुवर मेरे ऊपर उस भोजन का कुप्रभाव था। अतः गुरुवर मुझे त्रुटि के लिये क्षमा करें। यह घटनाक्रम भोजन के प्रभाव को वर्णित करता है कि फिर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को भोजन के प्रभाव पर एक उपदेश देते हुये बताया कि किस प्रकार का भोजन मानव के लिये उपयुक्त है। चाणक्य के यह विचार 'चाणक्य नीति' में संग्रहीत है। मानव के ऊपर भोजन व वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। स्वामी दयानन्द ने कहा है कि - ''मानव जिस भोजन को ग्रहण करता है व जिस वातावरण में रहता है उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर छलकता है।''

उदाहरण के लिये एक श्रमिक रोज मजदूरी करने घर के बाहर जाता है और दिनभर हाड़तोड़ मेहनत के बाद उसको जो पारिश्रमिक मिलता है वह उससे ही अपनी गुजर बसर करता है उसको कोई भी बीमारी आदि नहीं है और वह आराम से रात भर बिना किसी चिंता के सोता है। जबकि बेइमानी से काम करने वालों को देखिए तो उसका प्रभाव देखकर जीवन हैरत में पड़ जाता है कि बेईमान से काम करने वालों को हमेशा बीमारी घेरे रहती है और तरह-तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है और रात भर जागते व चिन्ता में व्यतीत करते हैं कि कैसे उनको इस समस्या से छुटकारा मिलेगा? उनके बच्चे भी पढ़-लिखकर अच्छे नहीं निकल पाते हैं और सारा बोझ भी इनको ही उठाना पड़ता है। जबकि मेहनत व ईमानदारी से काम करने वाले के बच्चे पढ़-लिखकर अच्छे-अच्छे पदों पर काबिज है व उनमें बीमारी आदि का कोई नाम ही नहीं है।

अतः हमें भोजन प्राप्ति के साधन व निवास हेतु सुवातावरण का विशेष ध्यान रखना चाहियें। ताकि हमारा जीवन अच्छा व सुगम बना रहे।

अंकुरित दालें स्वास्थ्य के लिये ज्यादा लाभदायक

गोविन्दकान्त श्रीवास्तव एवं ललित कुमार

अंकुरित दालों का उपयोग मुख्यतया चीन, भारत, म्यांमार व इन्डोनेशिया इत्यादि देशों में किया जाता है लेकिन इसकी पोषक गुणवत्ता के कारण इसका उपयोग पश्चिमी देशों में भी बढ़ रहा है। दलहनों का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है जैसे दाल, सम्पूर्ण बीज, खमीर बनाकर, तलकर एवं अंकुरित रूप में, लेकिन अंकुरित दलहनों का उपयोग पोषक गुणवत्ता के हिसाब से काफी उपयोगी माना जाता है क्योंकि अंकुरण के समय कुछ विषाक्त यौगिक काफी कम हो जाते हैं (जैसे फाक्टेट एवं फ्लैटूलेन्स यौगिक)। हाल ही के वर्षों में अंकुरित दलहनों का प्रचलन कम लागत वाले पौष्टिक भोजन के रूप में बढ़ा है। भारत में ज्यादातर लोग चना एवं मूँग का ही प्रयोग अंकुरित रूप में करते हैं।

अंकुरण कैसे करें?

सबसे पहले साबुत बीजों को अच्छी तरह से पानी से धो लेते हैं फिर उनको 8 से 12 घंटे तक पानी में भिगों देते हैं। उसके पश्चात, फूले हुए बीजों को पतले कपड़े में लपेटकर अंधेरे में 24 से 48 घंटे के लिये अंकुरण के लिये रख देते हैं। अंकुरित दानों को या तो कच्चा या सलाद या पके हुए भोजन के साथ ले सकते हैं। आजकल अंकुरित बीजों को पालीथीन के बैग में पैक करके लम्बे समय तक रखकर प्रयोग कर सकते हैं। अंकुरित दानों की पोषक गुणवत्ता साबुत दानों के सापेक्ष काफी बढ़ जाती है।

अंकुरण का पोषक गुणवत्ता पर प्रभाव

कार्बोहाइड्रेट : दलहनों में प्रायः 50 से 68 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पायी जाती है। कार्बोहाइड्रेट हमारे शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। प्रायः लोग यहीं जानते हैं कि दालों से मुख्यतया प्रोटीन ही पायी जाती है। अंकुरण के समय हाइड्रोलिक एन्जाइम बनते हैं जो स्टार्च (पालीसैकराइड) को साधारण शर्करा (ग्लूकोज) में परिवर्तित कर देते हैं जिससे अंकुरित बीजों में स्टार्च की मात्रा घटती है एवं शर्करा की मात्रा बढ़ती जाती है। यह क्रिया अल्फा एमाइलेज एवं फास्फोराइलेज एन्जाइम के द्वारा होती है। अंकुरित दानों में शर्करा की मात्रा बढ़ने से हमारे शरीर को त्वरित ऊर्जा प्राप्त होती है क्योंकि कोई भी कार्बोहाइड्रेट अन्त में शर्करा में ही परिवर्तित होता है।

खनिज लवण : दलहनों में प्रायः खनिज लवणों की मात्रा भी प्रचुर होती है जिसमें मुख्यतया पोटेशियम, कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा, सोडियम, मैग्नीशियम, ताबाँ एवं जस्ता होता है। पोटेशियम की मात्रा कुल खनिज

लवणों का 25-30 प्रतिशत होता है जो कि उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिये बहुत लाभदायक है। दलहनों में फाइटिक अम्ल की मात्रा काफी ज्यादा पायी जाती है जो कि खनिजों की उपलब्धता को काफी कम कर देता है परंतु अंकुरण के दौरान फाइटिक अम्ल का उपापचय हो जाने के कारण फाइटिक अम्ल की मात्रा कम हो जाती है जिससे प्रमुख खनिजों की उपलब्धता मानव शरीर में बढ़ जाती है।

विटामिन्स : दलहनों में मुख्य रूप से विटामिन बी-1 (थायमिन), बी-2 (राइबोफ्लेविन), नियासिन विटामिन-सी (एस्कार्बिक अम्ल) एवं फोलिक अम्ल पाया जाता है। अंकुरित दानों में विटामिन सी की मात्रा में सबसे ज्यादा वृद्धि होती है। विटामिन-सी एन्टीऑक्सीडेट होने के कारण कैंसर जैसी घातक बीमारियों से रक्षा करता हैं जबकि विटामिन बी समूह के विटामिनों में भी अंकुरण के दौरान इसकी मात्रा बढ़ जाती है।

टैनिन्सः यह भी एक विषाक्त यौगिक है जो हमारे शरीर में प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट की पाचक क्षमता को कम करता है। अंकुरण के दौरान, टैनिन्स की मात्रा 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। अंकुरित बीजों में टैनिन्स की मात्रा फालजीफिनॉल ऑक्सीडेज एन्जाइम के जलअपघटन एवं पानी के साथ घुलने के कारण कम हो जाती है। लेकिन आधुनिक शोधों से यह पता चला है कि टैनिन्स हमारे शरीर के लिये हानिकारक से अधिक लाभकारक हैं यह क्योंकि ये हमारे शरीर में एन्टीऑक्सीडेन्ट का कार्य करते हैं जो हमें कैंसर एवं अन्य बीमारियों से बचाता है।

सैपोनिन्स : दलहनों में सैपोनिन्स की मात्रा 0.05-0.23 प्रतिशत तक पायी जाती है। यह रूधिर में कोलेस्टेरॉल की मात्रा को कम करता है। अंकुरित बीजों में सैपोनिन्स की मात्रा कम हो जाती है। इससे कोलन कैंसर का खतरा भी कम हो जाता है।

सूचना एवं संचार तकनीक का माध्यम : कम्प्यूटर

देवराज एवं आदित्य प्रकाश

कम्प्यूटर विविध कार्य करने वाली मशीन हैं। मानवीय कार्यों के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो इसके बिना नहीं किए जा सकते हैं। कम्प्यूटर अपने सभी कार्यों में विद्युतीय पल्सों का उपयोग करता है। विद्युतीय पल्सें सिद्धान्तानुसार उच्च गति पर कार्य करती हैं। इससे कम्प्यूटर अत्यंत तेज गति से कार्य करने वाली मशीन बन जाती है। कम्प्यूटर के लिए जो द्वितीयक स्टोरेज डिवाइस प्रयुक्त की जाती है उसके लिए सामान्यता मेगाबाइट व गिगाबाइट का उपयोग किया जाता है। कम्प्यूटर अपने कार्यों को पूर्णरूपेण शुद्ध रूप से सम्पन्न करने में सक्षम है। इसलिए वह किसी प्रकार की गलती नहीं करता है। कम्प्यूटर से संबंधित किसी कार्य में गलती होने का कारण सदैव गलत प्रोग्राम या प्रयोगकर्ता द्वारा दिया गया कोई गलत निर्देश होता हैं एक बार प्रोग्राम के प्रारम्भ हो जाने पर यह निरन्तर कार्य करता रहता है। आज कम्प्यूटर लोगों, समाज, व्यापार, उद्योग एवं प्रशासन के सभी पहलुओं से जुड़ चुका है।

कम्प्यूटर से प्रश्नों को सेट करना, परीक्षाओं के प्रबन्धन एवं आयोजन में योगदान देना, आनलाइन परीक्षाएँ सम्पन्न कराना, परिणाम घोषित करना, परीक्षा के प्रश्न-पत्र को आनलाइन चेक करना आदि कार्य आसान हो जाते हैं। चालकों को विमान उड़ाने का प्रशिक्षण एवं उड़ान के समय विमान को नियंत्रित करने की विधि कम्प्यूटर के द्वारा सिखाई जाती है। कम्प्यूटर एवं साफ्टवेयर मिसाइल एवं अन्य प्रक्षेपास्त्रों को नियंत्रित करते हैं। सभी उच्चस्तरीय चिकित्सा उपकरण कम्प्यूटर से संचालित होते हैं। इसके अलावा, बीमारियों का पता लगाने, शरीर के आंतरिक अंगों की जानकारी प्राप्त करने, शल्य चिकित्सा के समय सहायता पहुंचाने तथा मरीज की जानकारी रखने आदि सभी में कम्प्यूटर का उपयोग किया जाता है। डिजिटल वीडियों एवं आडियों कम्पोजीशन, गणितीय गणनाएं, बैंक आदि में कम्प्यूटर का अपना महत्व है। एटीएम मशीनों एवं दुकानों में बिल की गणना, करों का ऑनलाइन भुगतान, एकाउटिंग, व्यापार की भविष्य की स्थिति का अनुमान, स्टॉक मार्केट में विभिन्न प्रकार के कार्य कम्प्यूटर की सहातया से ही संचालित और नियंत्रित होते हैं। मोबाइल फोन साफ्टवेयर के माध्यम से ही कार्य करते हैं। आजकल कृषि संबंधी जानकारी एवं उनके प्रचार-प्रसार में भी कम्प्यूटर का उपयोग होने लगा है। कम्प्यूटर के माध्यम से हमारे किसान भाई अपनी फसल में लगने वाली बीमारियों एवं कीटों की पहचान एनं उनकी उचित रोकथाम की जानकारी ले सकते हैं। सूचना संचार तकनीक के माध्यम से किसान मंडी में अपनी फसल के बाजार भाव को देख सकते हैं। आजकल मौसम के संबंध में भी सटीक जानकारी कम्प्यूटर के माध्यम से मिल रही है।

अन्दर झांक

देवी प्रसाद

दरपन को मत देख तू, अन्दर लेकिन झांक।
रंग रूप सब व्यर्थ है, अर्न्तमन को आंक।।
कर्मों की खुशबू भली, भला लगे है प्यार।
मनवां में गर सच बसे, रोशन तब संसार।
अपने पन की धूप से, सुखद-मधुर अहसास।
प्रीति प्यार ओर नेह से, अंजाना भी पास।।
जीवन इक वरदान है, समझ न तू अभिशाप।
फूलों से दामन सजा, महक पायेगा आप।।
हर पल को नव पल बना, सुन्दर सुखद समीर।
जीवन को भरपूर जी, हर औरों की पीर।।
जाता पल न व्यर्थ हो, हर पल हो इतिहास।
मायूसी को छोड़कर, अपना ले तू आस।।
सुख तक सीमित मनुज जो, सूनापन आभास।
धरती तब उजड़ी लगे, धूँधला सा आकाश।।
अंधकार मन से मिटा, फैला तू आलोक।
खुद को भी रोशन करे, अरू जगमग कर लोक।।

अनुभव ही जगत में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है। ***सर्वपल्ली राधाकृष्णन***

पिता है तो.....!

राजेन्द्र कुमार निगम

पिता जीवन है, सम्बल है, शक्ति है
पिता सृष्टि में निर्माण की अभिव्यक्ति है।

पिता अँगुली पकड़े बच्चे का सहारा है
पिता कभी कुछ खट्टा-कभी खारा है।

पिता पालन है, पोषण है, परिवार का अनुशासन है
पिता धौंस से चलाने वाला प्रेम का प्रशासन है।

पिता ही रोटी है, कपड़ा है, और मकान है,
पिता छोटे से परिंदे का बड़ा आसमान है।

पिता अप्रदर्शित - अनंत प्यार है
पिता है तो बच्चों का इंतजार है।

पिता से ही बच्चों के ढेर सारे सपने हैं
पिता है तो बाजार के सब खिलौने अपने है।

पिता से परिवार में प्रतिपल एक राग है
पिता से ही माँ की बिंदी और सुहाग है।

पिता से हमको मिलता जीवनदान है
पिता दुनिया दिखाने का एहसान है

पिता सुरक्षा है, अगर सिर पर हाथ है
पिता नहीं तो सारा जीवन अनाथ है।

तो पिता के साथ तुम अपना नाम करो
पिता का अपमान नहीं, उन पर अभिमान करो।

माँ-बाप की कमी को कोई बांट नहीं सकता
ईश्वर भी इनके आशीषों को काट नहीं सकता।

विश्व के सभी देवता का स्थान दूजा है
माँ-बाप की सेवा ही सबसे बड़ी पूजा है।

विश्व में किसी भी तीर्थ की यात्रा व्यर्थ है
यदि बेटे के होते माँ-बाप असमर्थ है।

वो खुशनसीब है माँ-बाप जिनके साथ होते है
क्योंकि माँ-बाप के आशीषों के हजारों हाथ होते है।

सर पर लगते धूप हाथ से छाया करते,
पेड़ यूँ नहीं खुद का तपाया करते,

काश! बच्चे भी समझते ये दर्द का रिश्ता
तो बुजुर्ग फिर कभी आँसू न बहाया करते।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

1.	डा. ना. नडराजन निदेशक	अध्यक्ष
2.	डा. (श्रीमती) हेम सक्सेना कार्यकारी विभागाध्यक्ष (फसल सुरक्षा)	सदस्य
3.	डा. सुशील कुमार चतुर्वेदी विभागाध्यक्ष (फसल सुधार)	सदस्य
4.	डा. जगदीश सिंह विभागाध्यक्ष (मौलिक विज्ञान)	सदस्य
5.	डा. सुशील कुमार सिह विभागाध्यक्ष (सामाजिक विज्ञान)	सदस्य
6.	डा. संजीव गुप्ता परियोजना समन्वयक (मुलार्प)	आमंत्रित सदस्य
7.	डा. राजेश कुमार श्रीवास्तव वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक	सदस्य
8.	श्री दिवाकर उपाध्याय मुख्य सम्पादक	सदस्य सचिव

हिन्दी दिवस का आयोजन

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान में दिनांक 29 सितम्बर, 2012 को हिन्दी दिवस समारोहपूर्वक मनाया गया। समारोह में ब्रह्मानन्द डिग्री कालेज, कानुपर के प्राचार्य, डा. विवेक द्विवेदी मुख्य अतिथि थे। समारोह की अध्यक्षता, संस्थान के निदेशक, डा. ना. नडराजन ने की। अपने उद्‌बोधन में डा. द्विवेदी ने कहा कि हिन्दी इस समय पूरे देश में समझी और बोली जाती है और राष्ट्रीय सम्पर्क सूत्र की महती भूमिका निभा रही है। उन्होंने कहा कि हिन्दी अपनी सरलता और सहज बोधगम्यता के कारण ही जीवन के हर क्षेत्र में व्यापक स्तर पर उपयोग की जा रही है। सभी क्षेत्रों में हिन्दी की सफलता का परचम लहरा रहा है। अध्यक्षीय उद्‌बोधन में निदेशक, डा. नडराजन ने कहा कि हिन्दी दिवस के आयोजन से हम हिन्दी के प्रति अपना सम्मान और निष्ठा व्यक्त करते हैं और हिन्दी के उत्थान के लिए संकल्प लेते हैं। उन्होंने वैज्ञानिकों का आवाहन किया कि नई तकनीकी जानकारी किसानों तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने के लिए सतत् प्रयास करें और हिन्दी के नये प्रकाशनों पर बल दिया। अतिथियों का स्वागत, संस्थान की राजभाषा समिति के सचिव श्री दिवाकर उपाध्याय ने किया और संस्थान में राजभाषा की प्रगति आख्या प्रस्तुत की। इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने संस्थान की राजभाषा पत्रिका, दलहन आलोक तथा हिन्दी के चार अन्य नये प्रकाशनों - संस्थान का वार्षिक प्रतिवेदन, काबुली चना की उन्नत खेती, दलहन फसलों के प्रमुख कीट एवं व्याधियों का समेकित प्रबन्धन और कृषक भागीदारी द्वारा मसूर का बीज उत्पादन का विमोचन किया।

हिन्दी पखवाड़े में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागियों, कु. कीर्ति त्रिपाठी, श्री कन्हैया लाल, श्रीमती रश्मि यादव, सर्वश्री प्रोमित डायस, हरगोविन्द राठौर, रामबाबू, आलोक कुमार सक्सेना, श्रीमती रीता मिश्रा, सर्वश्री आर.के.पी. सिन्हा, मो. शब्बीर, राजेन्द्र कुमार, गोविन्द राम, श्रीमती मीनाक्षी वार्ष्णेय तथा कार्यालयीन कामकाज में हिन्दी का उत्कृष्ट प्रयोग करने के लिए सर्वश्री शुकदेव महतो, शिवशरण सिंह, श्रीमती रीता मिश्रा, श्रीमती मीनाक्षी वार्ष्णेय, सर्वश्री गुलाब चन्द्र शर्मा, आलोक कुमार सक्सेना, राजेन्द्र कुमार, अनिल कुमार सोनकर, हरगोविन्द राठौर और श्री जियालाल को मुख्य अतिथि ने पुरस्कार और प्रमाण पत्र प्रदान किए। कार्यक्रम के अन्त में डा. संजीव गुप्ता ने धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन डा. (श्रीमती) उमा साह ने किया।

आलसी व्यक्ति काम से नहीं, काम को सोचकर ही थक जाता है। ***लाल बहादुर शास्त्री***

वर्ष 2012 में दिए गए राजभाषा पुरस्कार

1. हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता
   - प्रथम कु. कीर्ति त्रिपाठी
   - द्वितीय श्री कन्हैया लाल
   - तृतीय श्रीमती रश्मि यादव

2. वाद-विवाद प्रतियोगिता
   - प्रथम श्री प्रोमित डायस
   - द्वितीय कु. कीर्ति त्रिपाठी
   - तृतीय श्री कन्हैया लाल

3. हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता
   - प्रथम (टीम 'ए')
     1. श्री कन्हैया लाल
     2. श्रीमती रश्मि यादव
     3. श्री हर गोविन्द राठौर
     4. श्री राम बाबू
   - द्वितीय (टीम 'बी')
     1. श्री आलोक सक्सेना
     2. श्रीमती रीता मिश्रा
     3. कु. कीर्ति त्रिपाठी
     4. मो. शब्बीर
     5. श्री आर.के.पी. सिन्हा
   - तृतीय (टीम 'सी')
     1. श्रीमती मीनाक्षी वार्ष्णेय
     2. श्री प्रोमित डायस
     3. श्री राजेन्द्र कुमार
     4. श्री गोविन्द राम

4. कार्यालयीन कामकाज में हिन्दी में अधिकाधिक कार्य करने हेतु पुरस्कार

- प्रथम	1. श्री शुकदेव महतो
	2. श्री शिव शरण सिंह
- द्वितीय	1. श्रीमती रीता मिश्रा
	2. श्रीमती मीनाक्षी वार्ष्णेय
	3. श्री गुलाब चन्द्र शर्मा
- तृतीय	1. श्री आलोक कुमार सक्सेना
	2. श्री राजेन्द्र कुमार
	3. श्री अनिल कुमार सोनकर
	4. श्री हरगोविन्द राठौर
	5. श्री जिया लाल

संस्थान के हिन्दी प्रकाशन

1. उत्तर प्रदेश में दलहन उत्पादन प्रौद्योगिकी
2. दलहनी फसलों में जैविक उर्वरकों की उपयोगिता
3. दलहनी फसलों में विषाणु जनित मुख्य रोग एवं उनकी रोकथाम
4. अरहर की उन्नत खेती
5. मसूर की उन्नत खेती
6. दलहन (डा. राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कार 2003-04 से पुरस्कृत)
7. चना की उन्नत खेती
8. मटर की उन्नत खेती
9. राजमा की उन्नत खेती
10. दलहन उत्पादन तकनीक
11. मूँग और उर्द की उन्नत खेती
12. दलहनी फसलों में सस्य विधियों द्वारा कीट प्रबन्धन
13. प्रशिक्षण पुस्तिका : दलहन उत्पादन, सुरक्षा एवं प्रसंस्करण
14. भारत में दलहनों की महत्ता, उत्पादन तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
15. हिन्दी सहायिका
16. उन्नत तकनीकों का विकास : सफलता की गाथा
17. अरहर बीज उत्पाादन तकनीक
18. दलहन उत्पादन तकनीक (संशोधित)
19. मटर की उन्नत खेती (संशोधित)
20. चना की उन्नत खेती (संशोधित)
21. चना बीज उत्पादन तकनीक
22. आई.आई.पी.आर. लघु दाल मिल द्वारा व्यवसाय सृजन
23. भारत में दलहन उत्पादन बढ़ाने की प्रौद्योगिकी
24. भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान : एक परिचय

25. चना फली भेदक - एक परिचय
26. चना फली भेदक का प्रबन्धन
27. यौन रसायन आकर्षक जाल - चना फली भेदक के प्रकोप के पूर्व ज्ञान की विधि
28. न्यूक्लियर पॉलीहाइड्रोसिस विषाणु - चना फली भेदक के नियंत्रण की एक जैविक विधि
29. दलहन प्रश्नोत्तरी - सामान्य
30. दलहन प्रश्नोत्तरी - उर्द
31. दलहन प्रश्नोत्तरी - मूँग
32. दलहन प्रश्नोत्तरी - मसूर
33. दलहन प्रश्नोत्तरी - मटर
34. दलहन प्रश्नोत्तरी - चना
35. दलहन प्रश्नोत्तरी - अरहर
36. मसूर के गुणवत्ता युक्त बीज की उत्पादन तकनीक
37. मूँग एवं उर्द की उन्नत खेती एवं उपयोग
38. कृषक भागीदारी द्वारा मसूर का बीज उत्पादन
39. वार्षिक प्रतिवेदन 2011-12
40. कृषक भागीदारी द्वारा मसूर का बीज उत्पादन
41. दलहनी फसलों के प्रमुख कीट एवं व्याधियों का समेकित प्रबन्धन
42. काबुली चना की उन्नत खेती
43. भारत में दलहन उत्पादन बढ़ाने की प्रौद्योगिकी
44. दलहन प्रश्नोत्तरी - चना
45. दलहन प्रश्नोत्तरी - मूँग
46. दलहन प्रश्नोत्तरी - मटर
47. दलहन प्रश्नोत्तरी - अरहर
48. दलहन प्रश्नोत्तरी - उर्द
49. दलहन प्रश्नोत्तरी - मसूर
45. वार्षिक प्रतिवेदन - 2012-13

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान कानपुर - 208 024
फोन : 0512-2570264,
ई.पी.बी.ए.एक्स. : 0512-2572464, 2572465
फैक्स : 0512-2472582
ई-मेल : director@iipr.ernet.in
वेबसाइट : http://www.iipr.res.in

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333